रबीन्द्रनाथ टैगोर के व्यंगात्मक लेख

रबीन्द्रनाथ टैगोर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मूल्य

दो रुपये

प्रकाशक

राजधानी ग्रन्थागार

59-H IV लाजपतनगर

नई दिल्ली—१४

प्रथम संस्करण, मई १९६०

मुद्रक

बैजनाथ प्रसाद

कल्पना प्रेस

रामकटोरा रोड, वाराणसी

पुस्तक के विषय में

साहित्याकाश में भास्मान भास्कर की भाँति देदीप्यमान स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुर को साहित्य में रुचि रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है। उनकी रचनाओं के विषय में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान प्रतीत होता है।

प्रस्तुत पुस्तक रवीन्द्र बाबू की "गल्प-सल्प" नामक बंगला पुस्तक का अनुवाद है। इसमें केवल गद्यांश का ही ग्रहण किया गया है। इस पुस्तक के प्रकाश में आ जाने से हिन्दी भाषा में रवीन्द्र साहित्य की श्री वृद्धि हुई है। अब तक यह पुस्तक हिन्दी में अप्राप्य थी। आशा है गुरुदेव की अन्य कृतियों की भाँति यह कृति भी समादृत होगी। पुस्तक की छपाई और साज-सज्जा अवश्य ही उत्कृष्ट बन पड़ी है। १६ प्वाइंट मोनो फेस टाइप का प्रयोग होने से यह पुस्तक बालकों और किशोरों के लिए अधिक उपयोगी हो गई है।

शारदा प्रतिष्ठान
सुड़िया, बाराणसी

आचार्य भद्रसेन वैद्य
२ मई १९६०

कथा-क्रम

विज्ञानी

'नाना जी, नीलू बाबू को तुम इतना अधिक क्यों पसन्द करते हो, मैं तो समझ ही नहीं सकती।'

'यह प्रश्न संसार का सबसे कड़ा प्रश्न है, इसका ठीक उत्तर विरले लोग ही दे सकते हैं ?'

'तुम अपनी पहेली रहने दो। ऐसे भुलक्कड़ और लापरवाह आदमी को स्त्रियाँ देख नहीं सकतीं।'

'यह तो तुमने सार्टिफिकेट दे दिया।'

'तुम जानते नहीं हो, वे बात-बात में किस तरह ऊधम मचा देते हैं। जो चीज हाथ के पास ही रहती है,
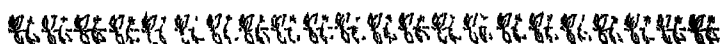
वह उनके हाथ में आती ही नहीं। उसे वे मुहल्ले-मुहल्ले में ढूँढ़ते फिरते हैं। ऐसे आदमी पर क्यों भक्ति है? बताओ तो सुनूँ।'

'जो चीज हाथ के पास ही रहती है वही सबसे दूर की चीज है, इसको कितने लोग जानते हैं। फिर भी वे निश्चिन्त हो रहते हैं।'

'कोई दृष्टान्त दे दो तो समझूँ।'

'जैसे तुम हो।'

'मुझे तुम ढूँढ़ने से क्या पाते नहीं हो?'

'ढूँढ़ने से पा जाता तो रस ही नहीं रहता। जितना ढूँढ़ता हूँ उतना ही अवाक हो जाता हूँ।'

'फिर वही तुम्हारी पहेली!'

'कोई उपाय नहीं है। बच्ची, मेरे लिए आज भी तुम सहज नहीं हो। नित्य ही नयी हो।'

कुसुमी ने नाना जी के गले से लिपट कर कहा—'नाना जी यह बात सुनने में अच्छी लग रही है।'

'वह बात रहने दो। नीलू बाबू के मकान में कल कैसा ऊधम मचा हुआ था वह खबर विधू मामा के मुँह से सुन लो न।'

'क्या मामाजी, क्या हुआ था, कहिए ?'

'अद्भुत बात'—विधु मामा ने कहा—'मुहल्ले में अफवाह फैल गयी, नीलू बाबू की कलम मिल नहीं रही है। खोज होने लगी, मसहरी की छत तक खोज होती रही। तब मुहल्ले के माधू बाबू को बुलाया गया।'

उन्होंने कहा—'अजी माधू, मेरी कलम कहाँ है ?'

माधू बाबू ने कहा—'मैं जानता तो खबर देता।'

धोबी बुलाया गया। हारू नाऊ की बुलाहट हुई। घरभर के सब लोग जब आशा छोड़ चुके थे तब उनके भानजे ने आकर कहा—'कलम तो तुम्हारे कान में ही अँटकायी हुई है।'

जब कोई भी सन्देह नहीं रह गया तब भानजे के गाल में एक थप्पड़ लगाकर वे बोले—'मूर्ख कहाँ का, जो

कलम ढूँढ़ने से नहीं मिल रही है उसको ही ढूंढ़ रहा हूँ।'

रसोई घर से स्त्री निकल आयी। बोली—'सारे मकान में तुमने ऊधम मचा रखा है ?'

नीलू बोले—'जिस कलम को चाहता हूँ उसे ढूँढ़ने से पा नहीं रहा हूँ।'

तब भाभी ने कहा—'जिसे पा चुके हो उसी से काम चला लो, जिसको तुम पा नहीं सके हो उसे तुम कहीं भी न पाओगे।'

नीलू वोले—'कम से कम कुण्डू जी की दूकान पर तो वह मिल ही सकती हैं।'

भाभी ने कहा—'नहीं जी, दूकान पर वह माल नहीं मिलता।'

नीलू ने कहा—'तब तो वह चोरी हो गयी है।'

'तुम्हारी वे सभी चीजें तो चोरी हो गई हैं, जिसे तुम आँखों से देख नहीं सकते। अब चुपचाप इसी कलम को लेकर लिखो, मुझे भी घर का काम धन्धा

करने दो। मुहल्ले भर के लोगों को तुमने व्याकुल कर दिया।'

'एक मामूली कलम मैं क्यों नहीं पाऊँगा, ?'

'बिना पैसे को नहीं मिलती, इसी लिए।'

'रुपया दूँ। अरे भूतो।'

'जी सरकार।'

'रुपये की थैली तो ढूँढ़ने से मिलती ही नहीं।'

भूतो ने कहा—'वह तो आपके कुरते के पाकेट में ही थी।'

'क्या ऐसी बात है ?'

पाकेट खोल कर देखा थैली उसी में है। थैली में रुपया नहीं है। रुपया कहाँ चला गया। रुपया ढूँढ़ने के लिये बाहर गये। फिर धोबी को बुला भेजा।

'मेरे पाकेट की थैली से रुपया कहाँ चला गया ?'

धोबी बोला—'मैं क्या जानूँ। वह कुरता तो मैंने नहीं धोया।'

उसमान दर्जी बुलाया गया।

'मेरी थैली से रुपया कहाँ चला गया ?'

उसमान बिगड़ उठा, बोला—'आपके लोहे के सन्दूक में है।

दायाद के घर से स्त्री लौट आयी, बोली—'क्या हो गया है ?'

नीलमणि ने कहा—'मकान में डाकू पाला गया है। पाकेट से रुपया ले गया।

स्त्री ने कहा—'हाय रे भाग्य ! उस दिन तो मकान मालिक को मकान का किराया पैंतीस रुपये चुकता दिया था।'

'ऐसी बात है क्या, मकान मालिक ने मकान छोड़ देने के लिए मेरे पास नोटिस भेजी थी ?'

'उसके बाद ही तो तुमने किराया चुका दिया था।'

'यह कैसी बात कहती हो ? मैंने तो बादुड़ बागान में नीमचाँद हालदार के पास जाकर उसका मकान किराये पर ले लिया है।'

स्त्री ने कहा—'बादुड़ बागान' किस जगह किस चूल्हे में है ?

नीलमणि ने कहा—'ठहरो, सोच लेता हूँ। वह किस गली में है, उसका नम्बर क्या है, यह तो याद ही नहीं पड़ता। किन्तु उसके साथ लिखा-पढ़ी हो गयी है, डेढ़ साल के लिए किराये पर लेना पड़ेगा।'

स्त्री ने कहा—'तुमने यह अच्छा नहीं किया है, अब दो मकानों का किराया कौन सम्हालेगा ?'

नीलमणि ने कहा—'यह बात तो चिन्ता की नहीं है। मैं सोचता हूँ मकान का नम्बर क्या है, वह किस गली में है। मेरे नोटबुक में बादुड़ बागान का मकान दर्ज किया हुआ है, किन्तु याद नहीं पड़ता कि गली का नम्बर लिखा है या नहीं।'

'तो तुम अपना नोटबुक निकालो न।'

'मुश्किल तो यह हो गयी है कि इधर तीन दिन से नोटबुक ढूँढ़ने से मिल ही नहीं रही है।'
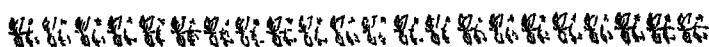
भानजे ने कहा—'मामा, याद नहीं है? उसे तो तुमने दीदी को दिया था स्कूल की कापी लिखने के लिए।'

'तेरी दीदी कहाँ चली गयी है?'

'वे तो चली गयी हैं, इलाहाबाद मौमा जी के घर।'

'देखता हूँ मुश्किल में डाल दिया। अब कहाँ ढूंढ़ कर पाऊँगा। कौन गली, कौन नम्बर है।'

ऐसे ही समय में नीमचाँद हालदार का मुनीब आ धमका। वह बोला—'मैं बादुड़ बागान के मकान का किराया माँगने आया हूँ।'

'किस नम्बर का?'

'वही जो शिबू समाद्दार की गली में १३ नम्बर का मकान है, उसी का।'

'बच गया, बच गया। सुनती हो कारमी? १३ नम्बर शिबू समाद्दार की गली। अब कोई चिन्ता की बात नहीं है।'

'सुन कर मेरा क्या लाभ होगा?'

'एक ठिकाना तो मिल गया।'

'वह तो मिल गया। अब तुम दो मकानों का किराया कैसे सम्हालोगे ?'

'इस बात पर पीछे विचार किया जायगा। किन्तु मकान का नम्बर है १३, गली का नाम है शिबू समाद्दार की गली।'

मुनीम जी का हाथ पकड़ कर बोला—'भैया, तुमने मेरी प्राण रक्षा कर दी। तुम्हारा नाम क्या है बता दो, मैं नोटबुक में नोट कर रक्खूँ।'

पाकेट पर हाथ चपका कर बोला—'ओ-हो यह क्या ? नोटबुक तो इलाहाबाद में है। अच्छा कण्ठस्थ कर रक्खूँ। १३ नम्बर, शिबू समाद्दार की गली।

× × ×

कुसुमी ने कहा—'कलम खो देने की यह घटना तो साधारण है। जिस दिन उनके एक पैर का चप्पल खो गया था, ढूँढ़ने से मिल ही नहीं रहा था, उस दिन नील-

मणि बाबू के मकान पर कैसा दैत्य–दल का सा उपद्रव मचा दिया गया था। यहाँ तक कि उनकी स्त्री ने प्रतीज्ञा कर ली कि मैं अपने मायके चली जाऊँगी। नौकर-चाकरों ने संगठित होकर एक स्वर से कहा, यदि चप्पल के बारे में उनके ऊपर सन्देह किया जाता है तो इस हालत में नौकरी से इस्तीफा देकर हम चले जायँगे। वह चप्पल ऐसा था कि उसमें तीन चकती लगी हुई थीं।
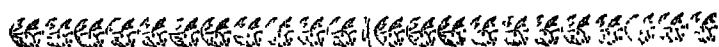
मैंने कहा—'यह समाचार मेरे भी कानों तक पहुँच गया था। मैंने देख लिया कि यह मामला उलझता जा रहा है। तब मैं चला गया नीलू बाबू के घर। मैंने कहा—'भाई साहब तुम्हारा चप्पल क्या खो गया है ?'

वह बोला—'भैया, खो नहीं गया है, कोई चुरा ले गया है, इसका प्रमाण मैं दे सकता हूँ।'

'प्रमाण का नाम सुनते ही मैं डर गया। वह वैज्ञानिक है। एक, दो, तीन के क्रम से लगातार जब वह प्रमाण देने लगेगा, तो मेरा नहाना-खाना नष्ट हो
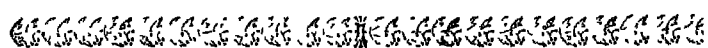
जायगा। मुझे कह देना पड़ेगा। निश्चय ही चोरी चला गया है। किन्तु ऐसे आश्चर्य जनक चोर का अड्डा कहाँ है कि एक पैर का चप्पल चुराता फिरता है, मैं जान लेना चाहता हूँ।'

नीलू ने कहा—'यही है तर्क करने का विषय। इसी से यह सिद्ध हो जाता है कि चमड़े का दाम बढ़ गया है।'

मैंने देखा, इसके बाद अब कोई बात न चलेगी। मैंने कहा—'नीलू भाई। तुमने असल बात पकड़ ली है। आजकल सब कारोबार बाजार पर निर्भर है। इसी लिए मैंने देखा है कि मल्लिक बाबू भी ड्योढ़ी पर पाँच-सात दिनों के अन्तर में मोची दरवान के नगौरे जूते में सुख तल्ला लगाने के बहाने आया करता है। उसकी दृष्टि राह पर चलने वाले लोगों के पैरों पर लगी रहती है।' इस प्रकार कुछ समय के लिए मैंने उनको शान्त कर दिया था। उसके बाद वही चप्पल बिछावन
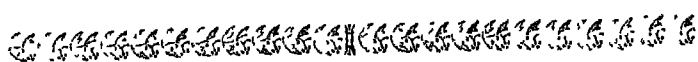
के नीचले भाग से निकल पड़ा था। नीलू का प्यारा कुत्ता उसको लेकर फाड़-फूड़ दिया था। इस चप्पल का पता लग जाने से नीलू को सबसे ज्यादा दुःख हुआ क्योंकि इससे उसका प्रमाण नष्ट हो गया।

× × ×

कुसुमी ने कहा—'अच्छा नाना जी, कोई मनुष्य इतना बड़ा मूर्ख कैसे हो जाता है?'

मैंने कहा—'ऐसी बात मत कहो बच्ची, वह गणितशास्त्र का विद्वान है। गणित करते-करते उसकी बुद्धि इतनी सूक्ष्म हो गयी है कि, वह साधारण लोगों की नजर में नहीं पड़ती।'

कुसुमी ने नाक भौं चढ़ाकर कहा—'अपना गणित लेकर वे क्या करते हैं?'

मैंने कहा—'आविष्कार करते हैं। चप्पल क्यों खो जाता है, इसका कारण सदा उनको ढूंढ़ने पर नहीं
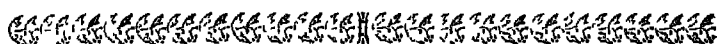
मिलता, किन्तु चन्द्र में ग्रहण लगने में चतुर्थ सेकेण्ड की भी देर क्यों होती है, यह बात उनके गणित से पकड़ ली जायगी। आज कल वे यही प्रमाणित करने में व्यस्त हो रहे हैं कि जगत् में ग्रह तारे कोई भी पदार्थ घूमते नहीं है, वे तो केवल उछल-कूद मचा रहे हैं। इस संसार में करोड़ों की संख्या में फतिंगे छोड़ दिये गये हैं। इसके अकाट्य प्रमाण उनके खाते में भरे पड़े हैं। प्रमाणों के विषय में कोई उनसे बात करता ही नहीं क्योंकि वे उन सबको निकालने लगेंगे यही आशंका रहती है।'

कुसुमी ने अतिशय विरक्त होकर कहा—'उनके सभी काम अस्वाभाविक हैं। खाना-पहनना छोड़कर फतिंगों की उछल-कूद नाप-नाप कर गणित कर रहे हैं। ऐसा न होने से उनकी ऐसी दशा ही क्यों होती ?'

मैंने कहा—'उनकी घर गृहस्थी के धंधे नियम से एक प्रकार से नहीं होते होंगे, उलट-पलट कर उछल-कूद कर चलते हैं।'

कुसुमी ने कहा—'अब मेरी समझ में बात आ गई कि इस मनुष्य की कलम क्यों खो जाती है। एक पैर का चप्पल भी ढूँढने से क्यों नहीं मिलता। और तुम भी उनको क्यों इतना प्यार करते हो। जितने भी पागल-सनकी हैं उनके ही ऊपर तुम्हारा प्रेम रहता है और वे ही लोग तुम्हारे चारो तरफ आकर भीड़ लगाते हैं।'

'देखो बच्चो, सबके अन्त में मैं तुम को एक बात जताये देता हूँ। तुम सोचती हो, नीलू अभागे को लेकर तुम्हारी भाभी क्रोध में ही पड़ी रहती हैं। तुमको मैं गुप्त रूप से बता देता हूँ—बात बिलकुल ही उलटी है। उसका यह अव्यवस्थित भुलक्कड़ स्वभाव देखकर ही वे मोहित हैं। मेरी भी वही दशा है।

२

राजा का मकान

कुसुमी ने पूछा—'नाना जी इरुमाली की बुद्धि शायद बहुत तेज थी।'

'जरूर थी। तुमसे अधिक तेज थी।'

कुसुमी ठिठक गयी। थोड़ी सी लम्बी साँस लेकर बोली—'ओः शायद यही कारण है कि उन्होंने तुमको वश में कर लिया था।'

'तूने तो यह उलटी ही बात कह दी, बुद्धि के द्वारा कोई किसी को वश में करता है?'

'तो कैसे करता है ?'

'करता है अज्ञानता से। सब के भीतर एक स्थान में एक मूर्ख डेरा जमा कर बैठा रहता है, उसी जगह अच्छी तरह मूर्खता को परिचालित कर सकने से मनुष्य को वश में कर लेना सहज हो जाता है। यही कारण है कि प्रेम करने को मन को फुसलाना कहते हैं।'

'किस तरह किया जाता है बता दो न।'

'मैं कुछ भी नहीं जानता। क्या होता है यही जानता हूँ। वही तो कहने जा रहा था।'

'अच्छा कहो।'

'मुझमें एक कमजोरी है। मैं सभी बातों से आश्चर्य में पड़ जाता हूँ। इरू ने उसी जगह मुझे प्रभाव में डाल दिया था। वह मुझे प्रत्येक बात में चकित कर देता था।

'किन्तु इरुमाली तो तुमसे छोटे थे।'

'कम से कम एक वर्ष छोटे थे। किन्तु मैं उनकी उम्र की थाह नहीं पाता था। वह मुझे इस तरह
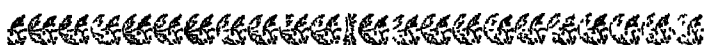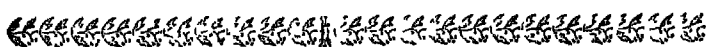
संचालित करता था मानो मेरे दूध के दाँत अभी उगे ही नहीं हैं। मैं उसके सामने मुँह बाये ही रहता था।'

'भारी मजेदार बात है।'

'मजेदार तो अवश्य ही है। अपने किसी सात मंजिला वाले राजा के मकान के सम्बन्ध में उसने मुझे परेशानी में डाल दिया था। कोई उसका पता ही नहीं पा रहा है। एक मात्र वही राजमहल का पता जानता है। मैं थर्ड नम्बर रीडर पढ़ता था। मास्टर साहब से मैंने पूछा था। मास्टर साहब ने हँस कर मेरा कान मल दिया था।'

मैंने इरू से पूछा—'राजमहल कहाँ है मुझे बता दो न।'

वह अपनी आँखों को विस्फारित करके बोला—'इसी मकान में ही।'

मैं उसके मुँह की तरफ मुँह फाड़कर ताकता रहा। मैंने पूछा—'इसी मकान में?—कहाँ है। मुझे दिखा दो न।'
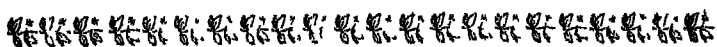
वह कहता—'मंत्र न जाने बिना तुम देखोगे कैसे ।'

मैंने कहा—'मंत्र मुझे सिखा दो न। मैं तुमको कच्चा आम काटने वाली सितुही दूंगा ।

उसने कहा—'मन्तर सिखाने का निषेध है ।'

मैंने पूछा—'सिखा देने से क्या होता है ।'

वह केवल कहता—'अरे बाप रे !'

मंत्र सिखा देने से क्या होता है मैं जान ही नहीं सका । उसकी भाव-भंगी देख कर शरीर काँपने लगता था। मैंने निश्चय कर लिया था कि एक दिन जब इरू राजमहल में जायगा, तब मैं छिप कर उसके पीछे-पीछे जाऊँगा । किन्तु वह उस समय राजमहल में जाता था जिस समय मैं स्कूल में चला जाता था ।

एक दिन मैंने पूछा था—किसी दूसरे समय जाने से क्या होता है। फिर वही जवाब मिला—'अरे बाप रे ।' जिद करने के लिए साहस ही नहीं होता था ।

मुझे आश्चर्य में डालकर इरू अपने को एक महान

व्यक्ति समझता था। शायद एक दिन स्कूल से लौटते ही वह बोल उठा—'यह कैसा प्रलय काण्ड है।

व्यस्त होकर मैंने पूछा—'कैसा काण्ड।'

उसने कहा—'मैं नहीं बताऊँगा।'

उसने यह अच्छा ही किया। कान से मैं सुन लेता कोई एक काण्ड, तो मन में बराबर वह प्रलय काण्ड घूमता रहता।

इरू 'हन्त-दन्तर' नामक मैदान में चला गया था, जब मैं सो रहा था। वहाँ पक्षीराज रहता है जो घोड़े पर चढ़ कर चरता हुआ घूमता है। मनुष्य को अपने पास पाते ही वह एकदम उड़ा कर बादलों में ले जाता है।

मैं हाथ की ताली बजा कर कहने लगा—'यह तो बड़ी मजेदार बात है।'

वह बोला—'मजेदार बात तो अवश्य ही है।...... अरे बाप रे!'

कौन सी विपद उपस्थित हो जाती, मैंने नहीं सुना।
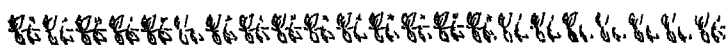
उसके मुँह की भंगी देखकर मैं चुप हो रहा। इरू ने परियों को घर-गृहस्थी का काम करते देखा था—कोई बहुत दूरी पर नहीं। हमारी पोखरी के पूरब किनारे जो चीनी बट-वृक्ष है, उसकी ही मोटी-मोटी जड़ों के अंधकार के बीच में परियों को उसने देखा था। उनके लिये फूल तोड़ कर उसने उनको वश में कर लिया था। वे फूलों के मधु के अतिरिक्त और कुछ भी आहार नहीं करतीं। इरू का परी के घर जाने का एकमात्र समय वही था, जब कि हमें दक्खिन के बरामदे में नीलकमल मास्टर से पढ़ने के लिए बैठ जाना पड़ता था।

इरू से मैंने पूछा था—'किसी दूसरे समय जाने से क्या होगा?'

इरू ने कहा—'परियाँ तितली बनकर उड़ जाती हैं।'

और भी बहुत सी आश्चर्य जनक चीजें उसकी झोली में थीं। किन्तु सबसे बढ़ कर आश्चर्य वही न दिखाई पड़ने वाला राज महल पैदा कर देता था। वह तो
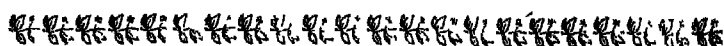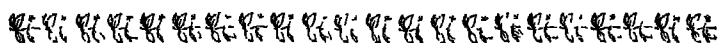
एकदम हमारे मकान में ही था, शायद मेरे सोने के कमरे में ही। किन्तु मैं तो इसका कुछ भेद जानता ही नहीं था। छुट्टीके दिन दोपहर के समय इरू के साथ आम पेड़ के नीचे मैं चला जाता था। वह कच्चे आम तोड़ देता था, उसको मैं अपनी बहुमूल्य घिसी हुई सितुही दे देता था। वह ऊपर का छिलका छील कर निकाल देता। फिर हम शुल्फे के साग के साथ बैठे-बैठे कच्चा आम खाने लगते थे। किन्तु ज्यों ही मंत्र का प्रसंग मैं उठाता त्यों ही वह बोल उठता था—'अरे बाप रे।'

उसके बाद मंत्र और महल कहाँ चला गया कहा नहीं जाता। इरू सयाना हो गया। राज महल ढूँढ़ने की मेरी भी उम्र बीत गयी—वही मकान बिना पता ठिकाने का रह गया। दूर के राज-भवन मैंने अनेक देखे हैं, किन्तु घर के पास का राज-भवन—'अरे बाप रे।'

३

बड़ी खबर

कुसुमी बोली—'आपने कहा था, आज कल के युग के जितने भी बड़े-बड़े समाचार हैं, उन्हें आप मुझे सुनाइयेगा। नहीं तो मेरी उचित शिक्षा कैसे होगी नाना जी ?'

नाना जी ने कहा—'बड़े-बड़े समाचारों की झोली लेकर उसे कौन ढोता फिरेगा, उसके भीतर तो बहुत कूड़ा भरा पड़ा है।'

'उनको निकाल दो न।'

'निकाल देने से बहुत थोड़ा-सा बाकी रहेगा, तब

तुमको मालूम होगा कि यह छोटा सा समाचार है। किन्तु असल में वही विशुद्ध समाचार है।'

'तुम मुझे विशुद्ध समाचार ही सुनाओ।'

'सुनाऊँगा। तुमको यदि बी० ए० पास करना होता तो अपने टेबिल पर कूड़े का ढेर लगा देना पड़ता। अनेक निरर्थक बातें, अनेक मिथ्या बातें अपनी कापी में लिखना पड़ता और लाद कर घूमना पड़ता।'

कुसुमी ने कहा—'अच्छा नाना जी, वर्तमान काल की जो सबसे बड़ी खबर हो, उसे ही तुम आज मुझे बिल्कुल छोटी बना कर सुनाओ। देखूँगी कि तुम्हारा ज्ञान कैसा है।'

'अच्छा, सुनो।'

'शान्तिपूर्वक काम-काज चल रहा था।'

'व्यापारी की नाव जा रही थी। पाल और डाँड़ में भयंकर विवाद चलने लगा। डाँड़ों का दल काँपते-काँपते माझियों की विचार-सभा में जा पहुँचा। बोला—'यह हालत तो ऐसी है कि अब सही नहीं जाती। तुम्हारा घमण्डी

पाल छाती फुला कर हमें छोटा आदमी कहा करता है। क्योंकि हम दिन-रात नाव के निचले हिस्से में बँधे रह कर जल को ठेलते-ठेलते चला करते हैं। वे चलते हैं अपने मन की मौज से। किसी के हाथ के सहारे की आशा नहीं रखते। इसी कारण वे बड़े आदमी हो गये। तुम फैसला कर दो कि किसकी कद्र ज्यादा है। हम यदि नीच हैं तो संगठित होकर एक साथ काम से इस्तीफा दे देंगे, देखेंगे कि तुम नाव कैसे चलाते हो।'

माझी ने देखा कि यह तो विपदा आ गयी। वह उन सब डाँड़ों को चुपके-चुपके एकांत स्थान पर आड़ में ले गया, और बोला—भाइयों, उसकी बातों का ख्याल मत करना। वह तो बिलकुल ही व्यर्थ की बातें कहा करता है। तुम वीर लोग प्राणों की बाजी लगा कर परिश्रम न करते तो नाव तिल भर भी न चलती। और, पाल जी तो अपनी मंजिल पर दिखावटी बाबूगिरी करते रहते हैं। ज्यों ही जरा भी तूफानी हवा बहने लगती है, त्यों ही अपना काम बन्द कर देते हैं, और सिकुड़ कर
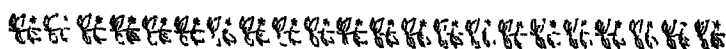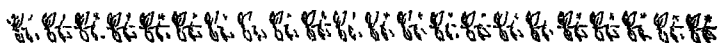
नाव को छाजन के ऊपर पड़ जाते हैं। तब उनका फड़फड़ाना बन्द हो जाता है, कोई आहट ही नहीं मिलती। किन्तु सुख में, दुःख में, आपत्ति-विपत्ति में, राह-घाट में, तुम लोगों पर ही मैं भरोसा रखता हूँ। पाल जी की नवाबी के उस बोझ को जब-तब तुम्हीं लोगों को खींचना पड़ता है। कौन तुम लोगों को नीच कहने वाला है?'

यह कह कर माझी को डर लगा कि ये बातें शायद पाल के कानों तक पहुँच गयी हैं। वह पाल के पास गया। उसके कान में फुसफुसा कर कहने लगा—'पाल जी! तुम्हारे साथ किसकी तुलना की जाय। कौन कहता है कि तुम नाव चलाते हो, यह काम तो मजदूरों का है। तुम तो अपनी मौज से चलते हो और तुम्हारे यार-दोस्त तुम्हारे ही इशारे से तुम्हारे पीछे-पीछे चलते हैं। इन डाँड़ों की नीचता पर तुम ध्यान मत देना। भाई, उन्हें मैंने इस तरह कस कर बाँध रक्खा है कि वे जितनी

भी उछल-कूद क्यों न मचाते रहें उन्हें काम करना ही पड़ेगा, कोई उपाय नहीं है।'

यह बात सुन कर पाल फूल उठा। बादलों की तरफ ताकता हुआ जम्हाई लेने लगा। किन्तु लक्षण अच्छे नहीं हैं। डाँड़ों की हड्डियाँ दृढ़ हैं, अभी तो झुके हुए हैं, किसी समय खड़े हो उठेंगे और झपेटा लगाने लगेंगे, तब पाल का गरूर चूर-चूर हो जायगा। मालूम हो जायगा कि डाँड़ ही नाव चलाने वाले हैं। चाहे आँधी हो, बौछार हो, ज्वार हो, भाटा हो।

× × ×

कुसुमी ने कहा—'बस यही थी तुम्हारी बड़ी खबर !! इसके सिवाय और कुछ नहीं है ! तुम तो मजाक कर रहे हो।'

नाना जी ने कहा—'अभी तो यह बात मजाक सी ही मालूम पड़ रही है। देखते-देखते यही एक दिन अवश्य ही बड़ी खबर बन जायगी।'

'तब क्या होगा ?'
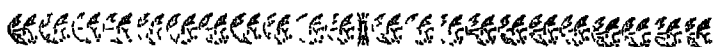
'तब तुम्हारे नाना जी उन डाँड़ों के साथ ताल मिलाने का अभ्यास करने लगेंगे।'

'और मैं ?'

'जहाँ डाँड़ जरा अधिक कचकच आवाज करने लगेंगे, वहाँ ही तुम जरा तेल लगा दोगी।' नाना जी ने कहा—'विशुद्ध खबर छोटी ही होती है, जैसे बीज। डाल तना को लेकर बड़ा वृक्ष पीछे आता है। अब तो समझ गयी ?'

कुसुमी बोली—'हाँ, समझ गयी।'

उसका चेहरा देखने से यही समझ में आया कि वह समझ नहीं सकी है। किन्तु कुसुमी में एक गुण है। नाना जी के सामने वह कभी सहज ही में मान लेना नहीं चाहती कि, वह कुछ भी नहीं समझ सकी है। इरु से भी उसकी बुद्धि कम है, इस बात को दबा रखना ही अच्छा है।

४

चण्डी

बच्ची, तुम सम्भवतः उस मुहल्ले के चण्डी बाबू को जानती हो ?

'क्यों न जानती ! वे तो सुप्रसिद्ध निन्दक हैं।'

× × ×

विधाता के कारखाने में विशुद्ध चीजें तैयार होती ही नहीं हैं, उनमें जरूर ही मिलावट रहती है। दैव योग से कोई कोई उत्तीर्ण हो जाते हैं। चण्डी इसका ही श्रेष्ठ नमूना है। उसकी निन्दकता में कोई मिलावट नहीं
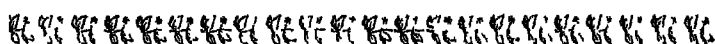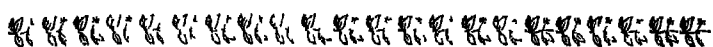
रहती। जानती ही हो, मैं हूँ विशुद्ध मनुष्य। इसीलिए ऐसी ही विशुद्ध चीज मैं अपने दरबार में जुटा लाता हूँ। उस आदमी को बिल्कुल जीनियस कहने में अत्युक्ति नहीं है। इसको छोड़ देने से फिर ढूँढ़ने से मिल ही नहीं सकता। एक दिन मैंने देखा कि वह अध्यापक अनिल के दरवाजे पर कान लगा कर कुछ सुन रहा है। मैंने उससे कहा—'इस तरह तुम किसको ढूंढ़ते फिरते हो जी ?'

'मैं यदि यही जानता, तब तो कोई बात ही नहीं थी। चारों तरफ आँख-कान खोल रखने पड़ते हैं। किसी पर भी विश्वास करने योग्य नहीं है। चोर-छिछोरों से सारा देश भर गया है।'

'यह तुम क्या कह रहे हो जी।'

'सुनकर अवाक् हो जाइयेगा, अभी उसी दिन की बात है कि मेरा चम्पा के रंग का अँगौछा रेगनी पर से न जाने कहाँ गायब हो गया।'

'यह क्या कह रहे हो जी, अँगौछा ?'

'हाँ साहब, अँगौछा ही। उसके कोने में जरा फट गया था, मैंने उसे सिलवा लिया था।'

'तुम अनिल बाबू के दरवाजे के पास इस तरह इधर-उधर टहल क्यों रहे हो। दूसरों का फटा-पुराना अँगौछा चुरा ले जाने की बीमारी ने उनको पकड़ ली है क्या ?'

'अरे छि: छि:, वे हैं बड़े आदमी, अँगौछा तो कभी उन्होंने आँखों से देखा ही नहीं है। टर्किश तौलिया के बिना तो उनका एक कदम भी आगे नहीं बढ़ने पाता।'

'तो फिर !'

'मैं यही सोचने लगा था कि आय तो उनकी अधिक नहीं है। फिर भी इतनी बाबूगिरी कैसे चलती है ?'

'शायद कर्ज लेकर चल रही है।'

'आज कल यह काम तो सहज नहीं है। कर्ज मिलने में दिक्कत है। उससे तो सहज काम है धोखा देना।'

'अच्छा, तुमने पुलिस में खबर दे दी थी ?'

'नहीं, इसकी कोई जरूरत ही नहीं पड़ी। वह मेरी स्त्री के गन्दे कपड़ों की टोकरी में से निकल पड़ा।' दुनियाँ में किसी पर भी विश्वास नहीं रहा।'

'तुम यह क्या कह रहे हो। वह तो ठीक जगह में ही था।'

आप हैं सीधे-सादे आदमी, असल बात ही आप नहीं समझ रहे हैं। आप तो मेरे साले कोचलू को जानते हैं। वह किस तरह मौज से घूमता फिरता है। पैसा कहाँ से आ जाता है। यह काम उसने ही किया था और घर वाली ने छिपा रक्खा था।'

'तुम कैसे जान गए।'

'हाँ हाँ, यह भी क्या जानने से बाकी है।'

'कभी उनको ले जाते तुमने देखा है?'

'जो ऐसा काम करता है, वह क्या दिखा-दिखा कर करता है? इधर देखिये न, पुलिस आँखें बन्द करके चुपचाप है। वे लोग तो हिस्सा लेते हैं। यह सब उत्पात

तभी से आरम्भ हो गया है जब से आप लोगों के गांधी महाराज प्रकट हो गए हैं।'

'इसमें वे फिर कहाँ से आ गये ?'

'यही तो है उनकी अहिंसा नीति। धड़ाधड़ बिना पीटे क्या चोर का चोरी-रोग कभी खतम होता है? वे स्वयं तो कौपीन पहने रहते हैं। एक पैसे का भी सम्बन्ध नहीं है। इतनी लम्बी-चौड़ी बातें उनको ही शोभा देती हैं। हम लोग गृहस्थ हैं। सुनने से चकित हो जाते हैं। इधर एक नया फन्दा निकल पड़ा है, जानते हैं तो ? वही जिसे आप लोग चन्दा कहते हैं। उसमें कम मुनाफा नहीं है। किन्तु वह कहाँ डूब जाता है, इसका हिसाब क्या कोई रखता है। महाशय, उस दिन मेरे ही घर वे लोग अनाथ अस्पताल का चन्दा माँगने के लिए आ धमके थे। लज्जा लगती है, क्या बताऊँ ! खाता हाथ में लेकर जो आये थे, उनको आप सभी लोग जानते हैं। डाक्टर हैं— नाम बताने की जरूरत नहीं है, कोई न कोई उनके कानों
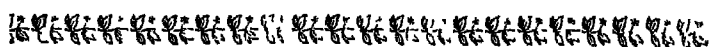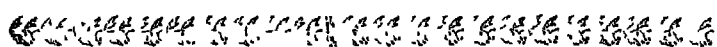
तक खबर पहुँचा ही देगा। वे कभी कभी हमारे घर नाड़ी देखने के लिए आया करते हैं। पैसा तो एक भी नहीं देना पड़ता, ठीक है, किन्तु फल भी एक पैसा भर नहीं मिलता। फिर भी, वे एम० बी० तो जरूर ही हैं। उनकी चिकित्सा आज-कल ऐसी है कि रोगी उनके पास फटकते भी नहीं। इसीलिए रुपये की कमी तो होती ही रहती है।'

'छिः, छिः तुम यह क्या कहते हो ?'

'महाशय जी, मैं तो मुँहफट आदमी हूँ। सच बोलने में मुझे हिचक नहीं होती। उनके मुँह के सामने ही मैं सुना दे सकता था। किन्तु क्या कहूँ, मेरे लड़के को वसूली के काम में लगाकर मेरा मुँह उन्होंने बन्द कर रक्खा है। उससे भी मुझे कभी-कभी इशारा मिला करता है। खूब मौज से जीवन बीत रहा है। समझ गये तो ? हमारे देश में आज कल नीचता कैसी असहनीय हो उठी है, उसका नमूना एक और मैं आपको सुना देता हूँ।'

'कैसा ?'

हमारे मुहल्ले में एक प्रचण्ड महामूर्ख है जिसका नाम लोगों ने कविवर रक्खा है। उसके ही द्वारा देखिये न मेरे नाम पर क्या लिखवा दिया है। घोर मानहानि हैं। निन्दकों का दल बन गया है। मुहल्ले में रहने लायक नहीं है। उनकी बातें सुनने से कष्ट होता है लोमड़ी कह कर मेरे पीछे-पीछे शोर मचा रहे हैं। उनको इतना साहस कभी न होता यदि इसके पीछे गांधी जी के चेला लोगों तथा नामी अभिभावकों का हाथ न रहता। देखो तो क्या लिख दिया है, बुरी कविता तो है न ? इसमें इन लोगों का पूरा हाथ है—

'यह क्या ! हमारे दरवाजे पर पुलिस क्यों ?'

'बात क्या है ?' मैंने आश्चर्य से पूछा।

एक अजनबी ने बतलाया—'चण्डी बाबू के लड़के के नाम केस आया है।'

'हैं, केस किस बात का ?'

'अनाथ अस्पताल का चन्दा वे खा गये हैं।'

'झूठी बात है।' चण्डी बाबू ने कहा—'शुरू से आखिर तक पुलिस की साजिश है। आप तो जानते हैं किसी समय मेरा लड़का आहार-निद्रा छोड़ कर गांधी जी के नाम से चन्दा माँगने के लिए द्वार-द्वार घूमता रहा। उसी समय से बराबर ही पुलिस वालों की उस पर नजर लगी ही रहती है। कुछ भी नहीं, यह पोलिटिकल मामला है।

× × ×

नानाजी, तुम्हारी यह कहानी तो मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगी।

५

राजरानी

'कल चण्डी के सम्बन्ध में जो बकवाद हुआ वह तो तुमको अच्छा नहीं लगा। वह तो एक चित्र मात्र था। कठोर लकीरों से अंकित था। उसमें रस नहीं था। आज तुमको जो कुछ सुनाऊँगा। वह सच्ची कहानी होगी।'

कुसुमी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—"हाँ, हाँ, ऐसी ही सुनाओ। तुमने तो उस दिन मुझसे कहा था, मनुष्य सदा से ही सच्ची खबर कहानियों में मिला कर

देते आये है। ठीक हलवाई की दूकान की तरह उनकी यह कारवाई चलती रहती है।

नानाजी बोले—'ऐसा न होने से मनुष्य का समय ही न कटता। मनुष्य बहुत अंशों में बच्चों के ही स्वभाव का है, उसको कहानियों के द्वारा फुसला रखने की जरूरत पड़ती है। भूमिका की कोई जरूरत नही है। अब कहानी शुरू कर देना चाहिये।

× × ×

एक राजा थे, उनके घर में राजरानी नहीं थीं। राजकन्या की खोज में दूत अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, मगध, कोशल और कांची राज्य में गये। दूत लोग लौट कर बोले—'महाराज, हमने क्या देखा सुनिये। किसी राज-कुमारी के नेत्रों के आँसू के साथ मोती झरते हैं। किसी की हँसी से माणिक झरते हैं। किसी का शरीर चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से बनाया गया है।

सुनते ही राजा समझ गये कि ये बातें बढ़ा-चढ़ा
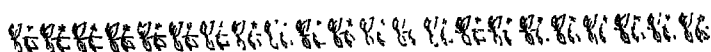
कर कही गयी हैं। अनुचरों के मुख से राजा के भाग्य में सच्ची बातें नहीं मिलतीं। उन्होंने कहा—'मैं स्वयं देखने जाऊँगा।'

सेनापति ने कहा—'तो फौज बुलाऊँ?'

राजा ने कहा—'मैं युद्ध करने नहीं जा रहा हूँ।'

मन्त्री ने कहा—'तो दरबार में साथ बैठने वाले मित्रों को खबर भेज दूँ?'

राजा ने कहा—'मित्रों और सम्बन्धियों के साथ कन्या देखने का काम ठीक नहीं होता।'

'तो हाथी तैयार कर देने को कह दूँ?'

राजा ने कहा—'मेरे दो पैर हैं।'

'कितने प्यादे साथ चलेंगे?'

राजा ने कहा—'मेरे साथ मेरी परछाईं जायगी।'

'अच्छा, तो अब आप राजा की पोशाक पहन लीजिये। चुन्नी-पन्ने का हार, माणिक-मण्डित मुकुट, हीरा-जड़ा कंगन, और गजमुक्ता का कर्णफूल धारण कीजिये।'
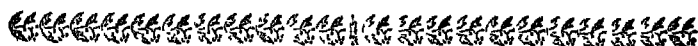
राजा ने कहा—'मैं राजा का बनावटी रूप बना कर ही रहता हूँ, इस बार मैं साधु का बनावटी वेश धारण करूँगा।'

राजा ने सिर पर जटा लगा ली, अंग में कौपीन पहन लिया, शरीर में भस्म रमा लिया, ललाट पर तिलक लगाया, हाथ में कमण्डल और बेल का डण्डा ले लिये। हर-हर महादेव कह कर रास्ते में निकल पड़े। देश-देश में खबर फैल गयी, पिनाकीश्वर बाबा हिमालय की गुहा से आ गये हैं, एक सौ पचीस वर्ष तक इनकी तपस्या चलती रही है, जो अब समाप्त हुई है।

राजा सबसे पहले अङ्ग देश में गये। राजकुमारी को समाचार मिला। उन्होंने सेवक से कहा—'बाबाजी को मेरे पास ले आओ।'

राजकुमारी के शरीर का रंग उज्ज्वल श्यामल था। बालों का रंग फतिंगे के पंख के समान था। दोनों आँखों में मृग जैसी चमकदार दृष्टि झलक रही थी। वे बैठी हुई
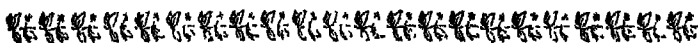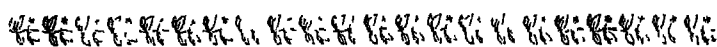
शृङ्गार कर रही थीं। कोई बाँदी स्वर्ण चन्दन घिस कर ले आयी, उससे चेहरे का रंग चम्पा फूल की तरह हो गया। कोई भृङ्गलाच्छन तेल ले आयी, उसके लगाने से केश बढ़ कर पम्पा सरोवर की लहर सरीखे हो गए। कोई मकड़ी के जाल बुनी साड़ी ले आयी। कोई हवा सी हलकी ओढ़नी ले आयी। यहाँ सब करते-करते दिन के तीन पहर बीत गए। किसी तरह भी मन लायक कुछ भी शृङ्गार न हो सका। साधु से उन्होंने कहा—'बाबा जी, मुझे तुम नयन-मोहक ऐसे शृङ्गार का उपाय बता दो, जिससे राज-राजेश्वर की आँखें चकाचौंध हो जायँ, राज-कर्म सब नष्ट हो जायँ। वह केवल मेरे मुँह की तरफ दिन-रात देखता हुआ जीवन बिताने लगे।'

साधु ने कहा—'तुमको और कुछ भी नहीं चाहिये?'

राजकन्या ने कहा—'नहीं, और कुछ भी नहीं।'

साधु बोले—'मैं तो अभी जा रहा हूँ, यदि पता लग गया तो फिर तुम्हें दर्शन दूँगा।'
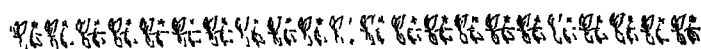
वहाँ से राजा बङ्ग देश में चले गये। राजकन्या ने साधु की प्रसिद्धि सुना। उनको पास बुला कर उन्होंने प्रणाम किया और कहा—'बाबाजी, आप मुझे ऐसा सुकंठ दे दीजिए, जिससे मेरे मुंह की बात सुनते ही राज-राजेश्वर आनन्द से उन्मत्त हो जाय। मेरी बातों के अतिरिक्त और किसी की बात उनके कानों को अच्छी ही न लगे। मैं जो कहूँ वे वही बात कहें।

साधु ने कहा—इस मन्त्र की तलाश मैं मैं जा रहा हूँ। मिल जायगा तो मैं फिर आकर दर्शन दूँगा।

यह कह कर वे चले गये।

इसके बाद वे कलिंग गये। वहाँ के अन्दर महल में एक दूसरी ही विचार-धारा चल रही थी। राजकन्या मन्त्रणा कर रही थीं कि उनके सेनापति किस तरह काँची जीत सकेंगे और वहाँ की महारानी का मस्तक नीचे झुका सकेंगे। इसके अतिरिक्त कोशल का गरूर भी उनसे सहा नहीं जाता था। कोशल की राजलक्ष्मी को

पकड़ कर बाँदो बना अपने चरणसेवा में लगाने की इच्छा तीव्र हो रही थी।

साधु के आगमन की खबर पाकर उन्होंने उसे बुला भेजा। उसके आ जाने पर वे बोलीं—'बाबा जी, मैंने सुना है कि श्वेत द्वीप में सहस्रघ्न अस्त्र है, जिसके तेज से नगर-ग्राम सभी जल कर खाक हो जाते हैं। मैं ऐसे पुरुष से व्याह करना चाहती हूँ, जिनके पैरों के पास बड़े-बड़े राजबन्दी हाथ जोड़े खड़े रहेंगे और राजकुमारियाँ बन्दिनी दशा में आकर कोई तो चामर झलती रहेंगी, कोई छत्र धारण किये रहेंगी, कोई उनके लिए पनबट्टे लाया करेंगी।

साधु ने कहा—'तुमको और कुछ नहीं चाहिये।'

राजकुमारी ने कहा—'और कुछ भी नहीं।'

साधु बोले—'मैं उस देश जलाने वाले अस्त्र की खोज में जा रहा हूँ।

साधु चले गये।
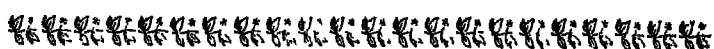
चलते-चलते वे एक बन में जा पहुँचे। जटा खोल कर अलग रख दी। झरने के जल में स्नान किया, शरीर का भस्म धोकर साफ कर डाला। उस समय दिन का तीसरा पहर हो चुका था। धूप तेज थी, शरीर थका हुआ था, भूख बड़ी तेज लगी हुई थी। आश्रय ढूँढ़ते-ढूँढ़ते राजा नदी के किनारे पहुँच गये। वहाँ उन्होंने खड़पतियों की बनी मड़ैया देखी। वहाँ एक लड़की चूल्हा बना कर उसी पर साग पका रही थी। वह जंगल में बकरी चराया करती थी, बन में घूम-घूम कर मधु संग्रह करके राज-भवन में पहुँचाया करती थी। यही काम करते करते आज देर हो गयी थी। अब सूखी लकड़ी जलाकर रसोई तैयार करने लगी थी। उसने जो कपड़ा पहना था उसमें दाग लगे हुए थे। उसके दोनों हाथों में दो शंख से बनी चूड़ियाँ थीं, कान में एक धान की बाली उसने लगा रक्खी थी। उसकी दोनों आँखें भौंरे के समान काली थीं। स्नान करके उसने भींगे हुए केशों को पीठ

पर बिखेर दिया था मानो बादलों के फट जाने पर रात्रि शोभा पा रही हो ।

राजा ने कहा—'मुझे बड़ी भूख लगी है ।'

लड़की बोली—'आप जरा धीरज रक्खें, अभी मैं रसोई बना रही हूँ, अभी आपके लिए भोजन तैयार हो जायगा ।'

राजा ने कहा—'और तुम क्या खाओगी ?'

उसने कहा—'मैं बन की लड़की हूँ । फल-मूल कहाँ मिलते हैं, इसकी जानकारी मुझे है । मुझे ढेरों मिल जायगा । अतिथि को अन्न देने से जो पुण्य होता है, वह तो गरीब के भाग्य में सहज में नहीं मिलता ।

राजा ने पूछा—'तुम्हारे और कौन हैं ?'

लड़की ने कहा—' मेरे बूढ़े पिता हैं, बन के बाहर उनकी मड़ैया है । मेरे सिवा उनका और कोई भी नहीं है । काम पूरा करके मैं उनके लिए कुछ खाना ले जाया करती हूँ । वे मेरी बाट जोहते होंगे ।
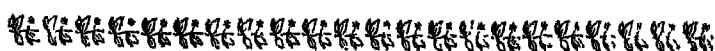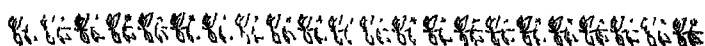
राजा ने कहा—'तुम अन्न लेकर चलो, और मुझे दिखा दो वे फल-मूल कहाँ हैं, जिन्हें तुम बटोर कर खाती हो।'

कन्या ने कहा—'ऐसा करने से तो मुझे दोष लगेगा।'

राजा बोले—'तुम देवता का आशीर्वाद पाओगी। तुम्हें कोई भय नहीं है। मुझे राह दिखा कर ले चलो।

पिता के लिए बना भोजन की थाली माथे पर रख कर वह चल पड़ी। फल-मूल संग्रह करके दोनों ने भोजन कर लिया। राजा ने जाकर देखा, बूढ़ा पिता दरवाजे के पास बैठा हुआ है। उसने कहा—'बेटी आज देर क्यों हो गयी ?'

कन्या बोली—'बाबूजी, तुम्हारे घर में अतिथि ले आयी हूँ।'

वृद्ध ने घबड़ा कर कहा—'यह तो गरीब का घर है, क्या देकर मैं अतिथि-सेवा करूँ ?'

राजा ने कहा—'मैं तो और कुछ भी नहीं चाहता।

मुझे तुम्हारी कन्या के हाथ की सेवा मिली है। आज मैं बिदा ले रहा हूँ। किसी दूसरे दिन आऊँगा।'

इसके बाद सात दिन बीत गये, सात रातें बीत गयीं। इस बार राजा राजवेश में आये। बन के बाहर उनके घोड़े-रथ आदि खड़े रहे। उन्होंने वृद्ध के पैरों पर मस्तक रख कर प्रणाम किया। कहा—'मैं हूँ विजय पत्तन का राजा। रानी की खोज में घर से निकला था, देश-विदेश में ढूँढ़ रहा था। इतने दिनों के बाद मैं पा गया। यदि कन्या राजी हो तो तुम मुझे अपनी कन्या दान करो।'

वृद्ध की आँखों में आँसू भर गये। हाथी लाया गया। लकड़ी चुनने वाली लड़की को बगल में बैठा कर राजा अपनी राजधानी को लौट गये।

अङ्ग-बङ्ग कलिंग की राजकुमारियों ने जब यह समाचार सुना तो कहा—'छिः।'

६

मुन्शीजी

'अच्छा नाना जी, आप के मुन्शीजी आजकल कहाँ हैं?'

'इस प्रश्न का मैं उत्तर दे सकूँगा, उनका समय शायद निकट आ गया है। फिर भी कुछ दिन सब्र करने की जरूरत है।'

'फिर यदि तुम ऐसी बात कहोगे तो मैं तुम्हारे साथ बोलना बन्द कर दूँगी।'

'सर्वनाश, इससे तो झूठ बोलना ही अच्छा है। तुम्हारे नानाजी जब स्कूल में पढ़ते समय भाग जाने

के अभ्यस्त थे, उस समय मुन्शीजी की उम्र क्या थी, बताना कठिन है।'

'वे शायद पागल थे।'

'हाँ, जैसा पागल मैं हूँ।'

'तुम पागल हो? क्या कहते हो कुछ ठिकाना नहीं रहता।'

'उनके पागलपन के लक्षणों को सुन कर तुम समझ जाओगी, कि मेरे साथ उनके स्वभाव का कितना आश्चर्य-जनक मेल है।'

'कैसे, सुनूँ तो?'

'जैसे वे कहा करते थे कि, इस संसार में वे अद्वितीय हैं। मैं भी यही कहता हूँ।'

'तुम जो बात कहते हो वह तो सच है। किन्तु वे जो कुछ कहते थे वह तो झूठी है।'

'देखो बच्ची, सत्य कभी असत्य नहीं होता, यदि वह सभी लोगों के सम्बन्ध में प्रयोग में न आ सके।

विधाता ने लाखों करोड़ों मनुष्यों को बनाया है, उनमें से प्रत्येक ही अद्वितीय हैं। उनके साँचे को उन्होंने फोड़ डाला है। अधिकांश व्यक्ति अपने को पाँच आदमियों के समान समझ कर आराम अनुभव करते हैं। दैवात् कोई-कोई ऐसे मनुष्य मिलते हैं, जो जानते हैं कि उनकी बराबरी का कोई नहीं है। मुन्शीजी उसी श्रेणी के मनुष्य थे।'

'नानाजी, तुम जरा स्पष्ट करके उनके बारे में बताओ न, तुम्हारी आधी बातें मैं समझ नहीं सकती।'

'धीरे-धीरे कह रहा हूँ, जरा धीरज रक्खो।'

मुन्शीजी हमारे मकान में रहते थे। भैया को फारसी पढ़ाते थे। उनके शरीर का ढाँचा बनाने में माँस की कमी पड़ गयी थी। इनी-गिनी कुछ हड्डियों पर मोमजामे की तरह चमड़ा सटा हुआ था—देखने से कोई भी अन्दाज नहीं कर सकता था कि उनकी क्षमता कितनी है। संसार में बड़े-बड़े पहलवान कभी जीतते हैं

कभी हार जाते हैं। किन्तु जिस तालीम को लेकर मुन्शीजी को गरूर था, उसमें वे कभी किसी से हारे नहीं थे। अपनी विद्या में वे किसी से भी कम न थे। मुन्शी जी अपने को बहुत बड़ा गवैया समझते थे। उनको अपने गानों पर पूरा विश्वास था। किन्तु उनके गाने से जो आवाज निकलती थी, वह केवल रोने-चिल्लाने की श्रेणी की थी, इसे समझना कठिन था। मुहल्ले के लोग यह समझ कर कि भारी विपद आ पड़ी है, भाग कर अपने घर चले जाते थे। हमारे मकान में एक नामी गवैया और रहते थे। उनका नाम विष्णु था। वे ललाट ठोंक कर कहा करते थे कि, मुन्शीजी मेरी भी विद्या छीन रहे हैं।

विष्णु का यह हताश भाव देखकर मुन्शीजी को विशेष दुःख नहीं होता था—वे जरा मुस्कुरा देते थे। सभी कहते थे, मुन्शीजी, भगवान ने आप को कैसा सुन्दर गला दिया है। यह सुन कर मुन्शी के चित्त में अपार

आनन्द उमड़ने लगता था। यह तो हुई गान विद्या की बात।

एक और विद्या पर मुन्शीजी का दखल था। उसको भी समझने वाले नहीं मिलते थे। अंग्रेजी भाषा में कोई सुनिपुण अंग्रेज भी उनके सामने खड़ा नहीं हो सकता, ऐसा उनका विश्वास था। यदि वे भाषण करने के लिए सभा भवन में जाते तो सुरेन्द्र बनर्जी को भी हार मान लेनी पड़ती। किन्तु ऐसी इच्छा उन्होंने किसी दिन भी नहीं की। विष्णु की जीविका बच गयी और सुरेन्द्रनाथ का नाम भी बचा रहा।

किन्तु मुन्शीजी का अंग्रेजी भाषा में दखल रहने के कारण हम लोगों को एक पाप कर्म करने में विशेष सुविधा हुई थी। इस बात को स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ। उन दिनों हम बंगाल एकाडेमी में पढ़ रहे थे, स्कूल के अध्यक्ष थे डिक्रूज साहब। हमारे प्रति उनकी धारणा ठीक नहीं थी। उन्होंने निश्चय रूप से विश्वास कर रक्खा
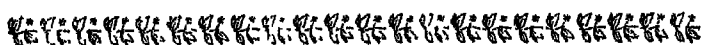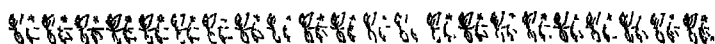
था कि हम कभी भी लिखने-पढ़ने में सफल न हो सकेंगे। किन्तु इसके लिए हमें चिन्ता ही क्या थी ? हमें विद्या नहीं चाहिये, बुद्धि भी नहीं चाहिये, हमारे पास पैतृक सम्पत्ति है ही। फिर भी स्कूल से छुट्टी की चोरी करने के लिए उनके प्रचलित नियमों को मानना ही पड़ता था। छुट्टी लेने का कारण पत्र द्वारा दिखाना ही पड़ता था। वह चिट्ठी चाहे झूठी ही क्यों न हो, डिफ्रूज साहब आँखें बन्द कर छुट्टी मंजूर कर देते थे। फीस के रुपये की हानि न होने से उनको कोई चिन्ता ही नहीं रहती थी। चिट्ठी मुन्शीजी से ही हम लिखवा ले जाते थे। छुट्टी स्वीकृत हो जाने पर हम मुन्शीजी को सूचित कर देते थे कि छुट्टी मंजूर हो गयी। मुन्शीजी जरा हँस देते थे। मंजूर क्यों न हो ! अंग्रेजी भाषा की योग्यता उनकी कैसी प्रखर थी ! वह अंग्रेजी व्याकरण के धक्के से ही हाईकोर्ट के जज की राय को बदल देने की शक्ति रखते थे। मैं कहा करता था—
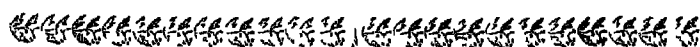
"अवश्य ही आपकी योग्यता प्रखर है।" हाईकोर्ट के जज के सामने कभी उनको अपना कमाल पेश करने का मौका नहीं मिला था।

किन्तु, सबसे ज्यादा सफलता उन्हें लाठी चलाने की कला में प्राप्त थी। हमारे मकान के बाहरी आँगन में धूप छिटकने के साथ ही उनका लाठी भाँजना शुरू हो जाता था। वे लाठी का खेल अपनी ही परछाईं के साथ करते थे। हुँकार देकर, वे कभी तो परछाईं पर लाठी से आघात करते थे, कभी उसके पैरों पर लाठी मारते थे, कभी उसकी गरदन पर, कभी उसके माथे पर और मुँह ऊपर उठाकर चारो तरफ की एकत्र भीड़ की ओर ताकने लगते थे। सभी कहने लगते थे—शाबाश परछाईं अभी टिकी हुई है यह तो छाया के बाप का परम सौभाग्य है। इस बात से एक शिक्षा मिलती है, परछाईं के साथ लड़ाई करने से कभी हार नहीं होती। एक बात और यह है कि यदि अपने मन में हम समझ लें

कि हम जीत गये हैं तो फिर उसकी जीत को कोई भी छीन नहीं सकता। केवल कल्पना में मुन्शीजी की जीत हुई। सभी कहने लगते थे—'शाबाश !' और मुन्शीजी मुस्कुरा उठते थे।

बच्चो, अब तुम समझ गयी होगी कि उसके पागलपन के साथ मेरा मेल कहाँ है। मैं भी परछाईं के साथ युद्ध करता हूँ। उस लड़ाई में मैं जीत जाता हूँ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रहता। परछाईं के साथ होने वाली लड़ाई को इतिहास सच्ची लड़ाई कह कर वर्णन करता है।

७

जादूगर

कुसुमी ने कहा—'अच्छा नाना जी, सुनती हूँ कि एक समय तुमने बड़ी-बड़ी बातों को लेकर खूब बड़े-बड़े ग्रन्थ लिख डाले थे।'

'जीवन में मैंने भी अनेक कर्म किये हैं। यह स्वीकार करना पड़ता है। भारतचन्द्र ने कहा है, बहुत बोलने वाला अधिक झूठ बोलता है।'

'मुझे यह सोचने में अच्छा नहीं लगता कि, मैं तुम्हारा समय नष्ट कर रही हूँ।'
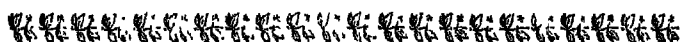
'जो भाग्यवान मनुष्य है, उसे ही योग्य मनुष्य उसका समय नष्ट करने के लिए मिल जाते हैं।'

'मैं शायद तुम्हारे लिए वही योग्य व्यक्ति हूँ।'

'अपने सौभाग्य से मैं पा गया हूँ। जो ढूँढ़ने से नहीं मिल सकता।'

'तुम से मैं बहुत लड़कपन करती हूँ ?'

'देखो, बहुत दिनों से ठाट-बाट की पोशाक पहन कर अब तक मैं समय काटता आया हूँ। अब तुम्हारे संसर्ग में पड़ कर लड़कपन की ढीली पोशाक पहन साँस लेने का अवसर मिला है। समय नष्ट करने की बात कहती हो, बच्ची, कोई समय ऐसा था जब कि मैं समय का गुलाम था। आज मैंने गुलामी से इस्तीफा दे दिया है। अन्त में थोड़े से दिन आराम से कट जायँगे। लड़कपन का साथी पाकर मैं आराम कुर्सी पर पैर पसार कर बैठ गया हूँ। अपने रुचि के अनुसार जो भी चाहूँ कहता

जाऊँगा, सिर खुजलाकर किसी के सामने कैफियत देने को जरूरत न पड़ेगी।'

'तुमको जो यह लड़कपन का नशा है, इसी से तुम जो भी चाहते हो अपनी खुशी से बना बनाकर कहते जाते हो।'

'क्या बनाकर कहा है, बताओ।'

'जैसे तुम लोगों का ह० च० ह० है। ऐसा सनकी आदमी तो मैंने देखा ही नहीं था।'

'देखो बच्ची। जब ऐसा जीव जन्म लेता है जिसके शरीर का ढाँचा अकस्मात् टेढ़ा हो जाता है, तब वह अजायब घर का माल हो जाता है। वही ह० च० ह० मेरे अजायब घर में पकड़ा गया है।'

'उनको पाकर तुम खूब खुश हो गये थे ?'

'अवश्य, मुझे बहुत खुशी हुई थी। क्योंकि मुझे आश्चर्यचकित करने वाले आदमियों की कमी हो गयी थी। ठीक उसी समय समूचे माथे में गंजापन लिये
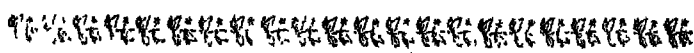
हरीशचन्द्र हालदार आ गये थे। उनका छोटा नाम ह० च० ह० है। उनकी चकित करने की तरकीब दूसरी ही थी। नाम के आरम्भ की पदवी उन्होंने खुद अपने ही हाथ से लगाया था। उनको जादू दिखाने का अभ्यास था। एक दिन बादल वाले दिन की सन्ध्या को चाय के साथ चिउड़ा का चबेना खा लेने के बाद वे कहने लगे---ऐसा जादू जानता हूँ, जिससे सामने की वह दीवाल खोखली हो जायगी।'

पंचानन दादा ने माथे पर हाथ सहलाते-सहलाते कहा—'यह विद्या अवश्य ही ऋषियों को मालूम थी।'

सुनकर प्रोफेसर हालदार बिगड़ उठे, टेबिल को थपकाकर बोले—'अरे छोड़िये अपने ऋषियों को, मुनियों को, दैत्यों को, दानवों को, और भूत-प्रेतों को।'

पंचानन दादा ने कहा—'तो आप क्या मानते हैं ?'

हरीश ने केवल एक ही छोटी-सी बात कह दिया—'द्रव्य-गुण।'
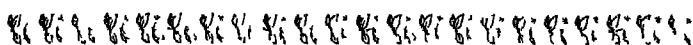
मैंने घबड़ा कर कहा—'वह क्या चीज है।'

प्रोफेसर बोल उठे—'और जो कुछ भी हो, मूर्खों को फुसलाने वाली बनावटी असम्भव बात नहीं है।'

हमने जान लेना चाहा कि वह द्रव्य-गुण क्या है?

प्रोफेसर ने कहा—'समझा कर कह रहा हूँ। आग एक आश्चर्यजनक पदार्थ है, किन्तु तुम लोगों के उन ऋषि-मुनियों की बात से वह नहीं जलती। जरूरत पड़ती है लकड़ी की, ईंधन की। मेरा जादू भी वही है। सात वर्ष तक हरीतकी खाकर तपस्या नहीं करनी पड़ती। द्रव्यगुण को जान लेना पड़ता है। जान लेने के साथ ही तुम भी कर सकते हो, मैं भी कर सकता हूँ।'

'यह आप क्या कह रहे हैं प्रोफेसर साहब, क्या मैं भी उस दीवाल को हवा बना सकता हूँ?'

'जरूर बना सकते हो। निरर्थक चीजों की जरूरत नहीं पड़ती, माल मसाले की जरूरत पड़ती है।'

मैंने कहा—'बता दीजिये न क्या चाहिये।'
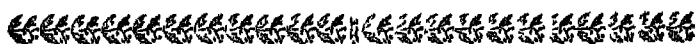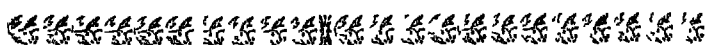
'बता रहा हूँ। कुछ नहीं, कुछ भी नहीं—केवल एक विलायती आमड़ा का बीज और सिल-लोढ़ा बस।'

मैंने कहा—'यह तो बहुत ही सहज है, आमड़ा का बीज और सिल मैं ला दूँगा। तुम दीवाल को उड़ा दो।'

'आमड़े का वृक्ष ठीक आठ वर्ष सात मास का होना चाहिये। कृष्णा द्वादशी को चाँद उग जाने के एक दण्ड पहले उसके अंकुर की उत्पत्ति होनी चाहिये। वह तिथि शुक्रवार को पड़नी चाहिए जब कि रात एक पहर बाकी रहे। फिर वह शुक्रवार अगहन मास की उन्नीस तारीख को न पड़ने से काम न चलेगा। सोच लो समझ लो भैया, इसमें धोखा-धड़ी कुछ भी नहीं है। दिन मुहूर्त्त तारीख सब ठीक करके बाँध देने की जरूरत है।'

हमने सोचा कि बात तो बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। बूढ़े माली को ढूँढ़ लाने के लिए कह दूँगा।'

'अभी कुछ बाकी रह गया है। उस सिल को तिब्बत के लामा लोग धवलेश्वर पहाड़ से कालिंपोंग के बाजार में बेचने के लिए ले आते हैं।'
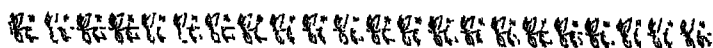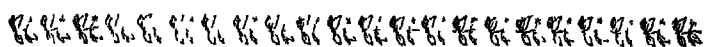
पंचानन दादा ने गंजे सर पर इस पार से उस पार तक हाथ सहला कर कहा—'यह तो कुछ कठिन लग रहा है।'

प्रोफेसर ने कहा—'कठिन कुछ भी नहीं है, पता लगाने से मिल जायगी।'

मन ही मन मैं सोचने लगा, पता तो लगाना ही पड़ेगा, छोड़ना नहीं है—'उसके बाद सिल को लेकर क्या करना होगा ?'

'ठहरो, थोड़ा अभी बाकी है। एक दक्षिणावर्त शंख चाहिये।'

पंचानन दादा बोले—'वह शंख मिलना तो सहज नहीं है, जो पाता है, वह तो राजा हो जाता है।'

'खूब ! राजानहीं तुम्हारा सर हो जाता है। शंख तो शंख ही है। उस शंख को आमड़े के बीज से, सिल के ऊपर रख कर, रगड़ना पड़ेगा। रगड़ते-रगड़ते बीज का चिह्न न रहेगा। शंख गायब हो जायगा और सिल कीचड़ हो जायगी। तब इसी कीचड़ को लेकर

दीवाल पर लीप दो। बस इसको ही द्रव्यगुण कहते हैं। द्रव्यगुण से ही दीवाल दीवाल बनी हुई है। मन्तर से कुछ नहीं होता है। और द्रव्यगुण से ही वह दीवाल धुआँ हो जायगी। इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है?'

मैंने कहा--'ठीक ही तो है। बात सुनने में खूब सच जान पड़ती है।'

पंचानन दादा तब अपने माथे पर हाथ सहलाते हुए बैठे रहे। उनके बायें हाथ में हुक्का था। हमारी खोज-सम्बन्धी त्रुटि के कारण यह साधारण बात प्रमाणित न हो सकी। इतने दिनों के बाद इरू के मन्तर, तन्तर, राज-भवन, सभी निरर्थक मालूम हुए। किन्तु प्रोफेसर के द्रव्यगुण में तो कहीं भी कोई धोखा या झूठ नहीं है। दीवाल ठोस ही रह गयी। प्रोफेसर के प्रति हमारा भक्ति-भाव अटल बना रहा। किन्तु, एक बार दैवयोग से मन की किस भूल के कारण उन्होंने द्रव्यगुण को अपनी मुट्ठी में ला रक्खा था। उन्होंने कहा

था—आम की गुठली मिट्टी में रोप देने से एक घंटे के भीतर वृक्ष भी मिल जायगा, फल भी मिलने लगेंगे।

हमने कहा—'यह तो आश्चर्य की बात है।'

प्रोफेसर ह० च० ह० ने कहा—'कुछ भी आश्चर्य नहीं है। द्रव्यगुण ऐसा ही है। उस गुठली में मनसासिज का गोंद इक्कीस बार लगाकर इक्कीस बार सुखा देना पड़ेगा। उसके बाद उसको मिट्टी में गाड़ तो, फिर देखो क्या होता है।

मैं उठ पड़ा, तैयारी करने लगा। लगभग दो महीने गोंद लगाने और सुखाने में बीत गये। क्या ही आश्चर्य है। वृक्ष भी तैयार हो गया, फल भी मिलने लगे, किन्तु सात वर्ष बाद। अब समझ गया कि द्रव्यगुण किसे कहते हैं। ह० च० ह० ने कहा—'गोंद ठीक नहीं लगाया गया था।'

मैं समझ गया कि, वह ठीक गोंद इस दुनिया में कहीं भी नहीं मिलता। समझने में देर हुई है।

८

परी

कुसुमी ने कहा—'तुम बातें बहुत बना कर कहा करते हो। एक सच्ची कहानी सुना दो न।'

मैंने कहा—'इस संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं। एक है सत्य, दूसरा है और–सत्य। मेरा कारोबार और–सत्य को लेकर चलता है।'

नाना जी, सब लोग कहते हैं कि, तुम क्या कहते हो कुछ भी समझ में नहीं आता।'

मैंने कहा—'बात तो सच है, किन्तु जो लोग नहीं समझते, वह तो उनका ही दोष है।'
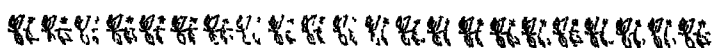
'तुम और—सत्य किसको कहते हो, जरा समझा कर कहो न।'

मैंने कहा—'उदाहरण स्वरूप जैसे तुम हो। तुमको सभी कुसुमी नाम से जानते हैं। यह बात सत्य है, इसके हजार प्रमाण है, किन्तु मुझे पता लग गया है कि तुम परीस्थान की परी हो। यह बात हुई और—सत्य।'

कुसुमी प्रसन्न हो गयी। बोली—'अच्छा, यह तुमको कैसे पता लगा।'

मैंने कहा—'तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया था। बिछावन पर बैठी हुई तुम भूगोल पढ़ रही थी। तुम्हारे सर के नीचे तकिया लगी हुई थी। तुम्हें नींद आ गई। उस दिन पूर्णिमा रात थी। खिड़की के रास्ते से चाँदनी तुम्हारे मुँह पर और तुम्हारी आसमानी रंग की साड़ी के ऊपर आ पड़ी। मुझे उस दिन स्पष्ट दिखाई पड़ा। परीस्थान के राजा ने अपना दूत भेजा है, अपनी परी की खबर लेने के लिए। वह तुम्हारी खिड़की के पास

आया था। उसकी सफेद चादर उड़ कर कमरे में पड़ रही थी। वह दूत तुमको नीचे से ऊपर तक देखता रहा। वह समझ नहीं सका कि तुम उसकी पाताल की परी हो या नहीं। तुम कोई इस पृथ्वी की ही परी हो, ऐसा ही सन्देह उसको हो गया। तुमको मिट्टी की गोद से उठा ले जाना उसके लिए सहज काम नहीं था। इतना भार उससे सहा न जायगा। क्रमशः चन्द्रमा ऊपर उग आया। कमरे में छाया पड़ गयी। दूत शिशु वृक्ष को छाया में सिर हिलाकर चला गया। उस दिन मुझे खबर मिली कि, तुम हो परीस्थान की परी हो, पृथ्वी की मिट्टी के भार से बँध गयी हो।'

कुसुमी ने कहा—'अच्छा नाना जी, मैं परीस्थान से यहाँ कैसे आ गयी।'

मैंने कहा—'वहाँ एक दिन तुम परिजात के वन में तितली की पीठ पर चढ़ कर उड़ती हुई घूम रही थी। हठात् तुम्हारी नजर एक नाव पर पड़ गयी—दिगन्त के घाट पर एक पार जाने वाली नाव लगी हुई
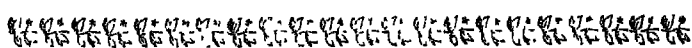
थी। वह सफेद बादलों से बनायी गयी थी। हवा लगने से हिल रही थी। तुमको न जाने क्या विचार आया, कि तुम उस नाव पर चढ़ गयी। नाव जल में बहने लगी। पृथ्वी के घाट पर आ लगी। तुम्हारी माँ ने तुमको उठा लिया।'

कुसुमी बहुत खुश हो गयी, ताली पीटने लगी। बोली—'नाना जी, यह क्या सत्य है?'

मैंने कहा—'वह देखो, किसने कहा सत्य है, मैं क्या सत्य को मानता हूँ? यह है और-सत्य।'

कुसुमी ने कहा—'अच्छा, मैं क्या परीस्थान में लौट कर न जा सकूँगी?'

मैंने कहा—'जा भी सकती हो, यदि तुम्हारे सपने की पाल में परीस्थान की हवा आकर लगे।'

'अच्छा, यदि हवा लग जाय, तो मैं किस रास्ते से किस तरफ से कहाँ जाऊँगी? वह क्या बहुत ही दूर है?'

मैंने कहा—'वह बहुत ही निकट है।'

'कितना निकट है?'

'जितने निकट तुम हो और मैं हूँ। उस बिछावन
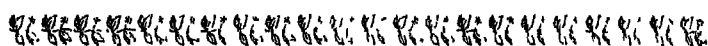
से बाहर न जाना पड़ेगा। और एक दिन खिड़की से चाँदनी आ पड़ने दो। इस बार जब तुम बाहर ताकने लगोगी, तब तुमको कोई सन्देह न रहेगा। तुम देखोगी ज्योत्स्ना के सोते से बादलों की नौका आ पहुँची है। किन्तु तुम तो अब इस पृथ्वी की परी हो गयी हो, उस नाव से तुम्हारा काम न चलेगा। जब तुम अपनी देह छोड़ कर निकल जाओगी, केवल तुम्हारा मन तुम्हारा साथी रहेगा। तुम्हारा सत्य इस पृथ्वी पर पड़ा रहेगा। और तुम्हारा और–सत्य कहाँ बह जायगा, हममें से कोई उसका पता न पा सकेगा।'

कुसुमी ने कहा—'अच्छा, इस बार पूर्णिमा रात आ जायगी, तो मैं उस आकाश की तरफ ताकने लगूँगी। नाना जी, तुम क्या हाथ पकड़ कर न चलोगे?'

मैंने कहा—'मैं यहीं बैठा रहूँगा, यहीं से तुमको रास्ता दिखा सकूँगा। मुझमें वह क्षमता है। क्योंकि मैं उसी और–सत्य का रोजगारी हूँ।'

९
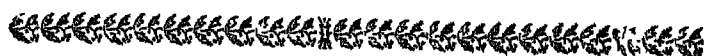
और-सत्य

'नाना जी, उस दिन तुमने मुझे और-सत्य के बारे में सुनाया था, वह क्या केवल परीस्थान में ही दिखाई पड़ता है?'

मैंने कहा—'ऐसी बात तो नहीं है, इस पृथ्वी पर भी उसका अभाव नहीं है। ध्यान से ताकते रहने से ही काम हो जाता है। किन्तु उसे देखने में एकाग्र दृष्टि रहनी चाहिये।'

'तो तुम देख पाते हो?'

'मुझमें वह गुण है। जो चीज दिखाई नहीं पड़ती उसे ही मैं हठात् देख लेता हूँ। तुम जब बैठे-बैठे भूगोल
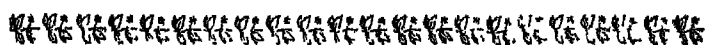
पढ़ने लगती हो, तब मुझे अपना भूगोल पढ़ना याद पड़ जाता है। तुम्हारी उस इयांसिकियांग नदी का विवरण पढ़ने से आँखों के सामने जो भूगोल खुल जाता था, उसको लेकर इम्तहान पास नहीं किया जा सकता। आज भी मैं स्पष्ट ही देख रहा हूँ कि कतार-कतार में ऊँट रेशम के बोरे लेकर चले जा रहे हैं। एक ऊँट की पीठ पर मुझे जगह मिल गयी थी।'

'यह कैसी बात है नाना जी। मैं तो यही जानती हूँ कि, तुम किसी दिन ऊँट पर नहीं चढ़े हो।'

'देखो बच्ची, तुम बहुत प्रश्न किया करती हो।'

'अच्छा, तुम कहते जाओ, उसके बाद ? ऊँट तुमको कहाँ से मिल गया ?'

'यह देखो, फिर प्रश्न ? ऊँट चाहे मैं पाऊँ या न पाऊँ, मैं उसके ऊपर चढ़ कर बैठ ही जाता हूँ। मैं किसी देश में जाऊँ या न जाऊँ, मेरे भ्रमण कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ती। यही है मेरा स्वभाव।'

'उसके बाद क्या हुआ ?'

'उसके बाद मैं कितने ही शहरों को पार कर गया—फुचुंग, हैंचाओ, चुंकुंग आदि कितनी ही मरुभूमियों के भीतर से रात के समय मैं तारों को देखता हुआ रास्ता पहचान कर चलता गया। जलपाई के जंगल से, अंगूर के खेतों से, पावन वृक्षों की छाया से गुजरना पड़ा। एक बार मैं डाकू के हाथ में पड़ गया था। सफेद भालू दोनों पंजों को उठा कर सामने आ खड़ा हुआ था।'

'अच्छा, तुम इतना घूमते रहे हो, तुमको समय कब मिला?'

'जब क्लास भर के लड़के कापी लेकर परीक्षा दे रहे थे।'

'तो तुम परीक्षा में कैसे पास हुए?'

'इसका सहज उत्तर यह है कि, मैंने पास नहीं किया।'

'अच्छा, तुम कहते जाओ।'

'इसके कुछ दिन पहले मैंने उपन्यास में चीन देश की राजकन्या के बारे में पढ़ा था, वे बहुत ही सुन्दरी हैं। आश्चर्य की बात मैं क्या बताऊँ। उसी राजकन्या से

मेरी भेंट हो गयी। यह घटना फुचाम्रो नदी के घाट पर हुई थी। वह घाट श्वेत पत्थरों से बना है। ऊपर नीले पत्थरों का मराडप है। दोनों तरफ दो चम्पा के वृक्ष खड़े हैं। उनके नीचे दो पत्थर की बनी सिंह-मूर्तियाँ हैं। पास ही स्वर्ण निर्मित धूपदान है। उनमें से कुराडली की आकृति से धुम्राँ निकल रहा था। एक दासी पंखा झल रही थी। एक चामर हिला रही थी। एक उनके बाल बाँध रही थी। उस समय राजकन्या अपने दूध-सरीखे श्वेत मोर को अनार के दाने खिला रही थीं। मुझे देख कर वे चौंक उठीं, बोलीं—'कौन हो तुम।'

उसी समय झट से मुझे याद पड़ गया कि मैं हूँ बंग देश का राजकुमार।

'यह कैसी बात। तुम तो—' कुसुमी बोली।

यह देखो, फिर प्रश्न! मैं कहता हूँ कि उस समय मैं बंग देश का राजकुमार था। इसी लिए तो बच गया। नहीं तो वह मुझे निकाल बाहर करती। किन्तु उसने

यह न करके मुझे सोने की प्याली में चाय पीने को दी। उस चाय में चन्द्रमल्लिका मिला दी गयी थी। गन्ध से आकुल कर देने वाली वह चाय थी।'

'तो क्या उसने तुम्हारे साथ ब्याह कर लिया ?'

'देखो, वह बात बहुत ही गुप्त है। आज तक कोई भी नहीं जानता।'

कुसुमी ताली पीटने लगी, बोल उठी—'ब्याह निश्चय ही हुआ था, खूब धूम-धाम के साथ हुआ होगा।'

'मैंने देखा कि यदि ब्याह न करूँगा, तो वह बहुत ही दु:खी हो जायगी। अन्त में ब्याह हो गया। मैं हैचाओ शहर का आधा राज्य पा गया। मैं श्रीमती कांचनी देवी को पा गया।

'पाकर क्या हुआ ?'

'देखो, चुप हो रहो। मैं कोई भी उत्तर नहीं दूँगा। तुम्हें दु:ख नहीं मानना चाहिये। उस समय तुम्हारा जन्म नहीं हुआ था—यह बात याद रक्खो।'

१०

मैनेजर साहब

'आज मैं तुमको जो कहानी सुनाऊँगा, मेरी समझ से वह तुमको अच्छी नहीं लगेगी।'

कुसुमी ने पूछा—'वह क्यों अच्छी नहीं लगेगी?'

'जिस आदमी की बात कहना चाहता हूँ वह किसी राणा-महाराणा के दल को छोड़ कर अभी चित्तौड़ से नहीं आया है—

'चित्तौड़ से उसके न आने से क्या कहानी नहीं बनती?'

'जरूर बनती है—उसी को तो कहना है। यह
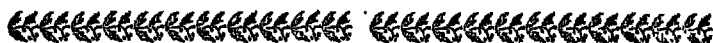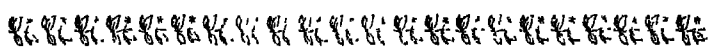
मनुष्य एक जमींदार का साधारण प्यादा है। यहाँ तक कि उसका नाम भी मैं भूल गया हूँ। मान लिया जाय उसका नाम सुजनलाल मिसिर है। नाम में जरा गड़बड़ हो जाने से इतिहास का कोई विद्वान् उसको लेकर तर्क नहीं करेगा।

उस दिन जमीन्दारी का वार्षिकोत्सव दिवस था। लगान-वसूली का प्रथम दिन था। यह काम तो बहुत विषम-कार्य है। किन्तु जमीन्दारी-विभाग में वही एक 'पर्व' बन गया है। सभी प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं—जो लगान देता है वह भी और जो लगान बक्स में भरता जाता है वह भी। इसमें हिसाब मिलाकर देखने की जरूरत नहीं थी। जो जो-कुछ दे सकता है—वही देता है। पावने के बारे में कोई विवाद नहीं किया जाता। खूब धूमधाम होती है। गाँव-देहात में शहनाई की धुन से आकाश में उन्मत्तता छा जाती है। नये कपड़े पहन कर प्रजा गण कचहरी में सलाम करने आते हैं।
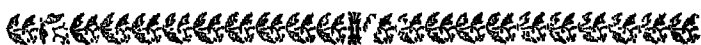
उस उत्सव के दिन ढोल-शहनाई की आवाज से जाग उठने के बाद मैनेजर साहब ने निश्चय किया कि, वे दूध से स्नान करेंगे। चारो तरफ समारोह देख कर उनके मन में विचार उठ पड़ा कि वे कोई साधारण आदमी नहीं हैं। साधारण जल से उनका अभिषेक कैसे होगा। ग्वाले प्रजा जनों के घरों से घड़ों में भर-भर कर दूध लाया गया। उनका स्नान सम्पन्न हुआ। उनका नाम चारो तरफ फैल गया। उस दिन शाम को मकान के चबूतरे पर बैठ कर वे गुड़गुड़ी पर दम लगा रहे थे। ऐसे समय में सुजन लाल मिसिर वहाँ आ गया। ब्राह्मण का लड़का था। लाठी चलाने में उसने खूब नाम कमाया था। बोला—'हुजूर आपका नमक तो बहुत दिनों से खाता आया हूँ किन्तु बहुत दिनों से बैठा हुआ हूँ। मुझे तो आपने किसी काम में नहीं लगाया। यदि कुछ करने की जरूरत हो तो हुकुम दीजिये।

मैनेजर गुड़गुड़ी पर दम लगाने लगे। एक काम
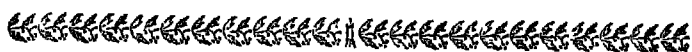
की याद पड़ गयी। जसीम मण्डल रेती के हलके का आसामी था, उसका खेत पड़ोसी जमींदार की सीमा से सटा हुआ था। ज्योंही फसल तैयार होती थी, पड़ोसी जमीन्दार अपने आदमियों को ललकार कर फसल काटने में रुकावट डाल देता था। जसीम लाचार होकर दोनों ही जमीन्दारों को लगान देकर अपने खेत की खड़ी फसल को बचाता था। क्योंकि दोनों के ही खातों में उसका नाम दर्ज था। जो मैनेजर दूध में स्नान करते थे, उनको यह अच्छा नहीं लगा। इस साल भदई धान काटने का समय आ रहा है—यह रेती के खेतों की विशेष पैदावार है। रेती का जल सूख जाने पर किसान नरम, नयी मिट्टी में बीज बो देता है। सावन-भादों मास में फसल काट कर बखार भर देता है। यह वर्ष अच्छा निकला था। धान की बालियों से सारा खेत लहरा रहा था। इस बार फसल के बेदखल हो जाने से भारी नुकसान हो जायगा।
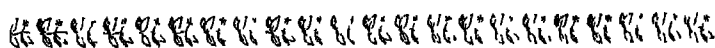
मैनेजर साहब ने कहा—'सरदार एक काम करना पड़ेगा। जसीम के खेत में तुमको धान की रखवाली करनी पड़ेगी। केवल तुम्हारे ही ऊपर इसका भार रहा। देखूंगा, तुम कैसे मर्द हो?'

मैनेजर घमण्ड से भरा हुए मिसिर को हुक्म देकर गुड़गुड़ी पर तमाखू पीने लगे।

धान काटने का समय आ गया। दिन-रात हरदम मिसिर जसीम के खेत में पहरा दे रहा था।

एक दिन फसल से भरे हुए खेत में विपक्षियों के आदमी शोर मचाते हुए आ धमके। मिसिर ने छाती तान कर कहा—'भाइयों, मेरे रहते यह धान तुम लोगों के घर नहीं जा सकता। सलाम ठोंक कर अपने घर चले जाओ।'

मिसिर जितना ही बड़ा सरदार क्यों न हो। परन्तु उस दिन वह अकेला था। जब लोगों ने धावा बोल दिया और घेरा डाल दिया, तब वह सबको रोकने लगा।

विपक्ष के लोगो ने कहा—'दादा तुम रोक न सकोगे। क्यों प्राण देते हो।'

मिसिर बोला—'नमक खाया हूँ, प्राण जाता है तो जाने दो। नमक का मान रखना ही पड़ेगा।'

दंगा शुरू हो गया। केवल लाठी की मार रहती, तो सम्भवतः मिसिर रोक भी देता। किन्तु विपक्षी बर्छी चलाने लगे। एक बर्छी मिसिर के पैर मे बिंध गयी।

विपक्षियों ने फिर चेतावनी देकर कहा—'अब छोड़ दो, हट जाओ। अब क्यो लड़ते हो ? हट जाओ।'

मिसिर बोला—'यह मिसिर सरदार प्राणों का भय नहीं रखता, भय रखता है बेईमानी से।'

अन्त में एक बर्छी आकर उसके पेट में बिंध गयी। यह चोट खतरनाक लगी। पुलिस के हाथ में पड़ जाने के भय से विपक्षी भागने लगे। मिसिर ने बर्छी खींच कर निकाल दी। पेट पर चादर लपेट कर विपक्षियों के पीछे-

पीछे दौड़ने लगा। अधिक दूर न जा सका। जमीन पर गिर पड़ा।
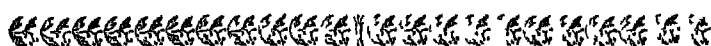
पुलिस आयी। मिसिर ने जमींदार को बचाने के लिए उसका नाम भी नहीं बताया। उसने कहा—मैं जसीम की नौकरी करता हूँ। उसका धान अगोर रहा था।

मैनेजर को सारा समाचार मिला। वे गुड़गुड़ी पर तम्बाखू पीते रहे।

दूध से स्नान करने की प्रसिद्धि उनकी साधारण नहीं थी—ऐसा कर्म तो सर्व साधारण के लिए साध्य नहीं है। किन्तु वह जवान नमक खा चुका है, तब प्राण दे देना, यह कोई भारी आश्चर्यप्रद नहीं है। ऐसी तो घटनाएँ होती ही रहती हैं। किन्तु, दूध से स्नान करना! यह बहुत बड़ी बात है।

११

चन्दनी

जानते ही तो हो उस दिन कैसा काण्ड हो गया। यह कहना चाहिये कि बिलकुल ही डूब गये थे। किन्तु पेंदो में किस जगह छेद हो गया है, इसकी कोई भी खबर नहीं मिली। माथे में दर्द भी नहीं था, माथे में चक्कर भी नहीं आया, शरीर में कहीं व्यथा भी नहीं थी, पेट में जरा भी मरोड़ या पीड़ा नहीं थी। यमराज के दूत-गण खबर मिलने के सभी दरवाजे बन्द कर फुसफुसा कर मंत्रणा कर रहे थे। ऐसी सुविधा तो फिर नहीं मिल
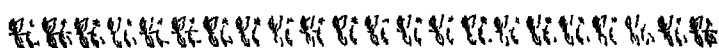
सकती। डाक्टर लोग कलकत्ते में थे, नब्बे मील की दूरी पर। उस दिन की यही अवस्था थी।

सन्ध्या का आगमन हो चुका था। बरामदे में मैं बैठा हुआ था। घने बादल छा गये। वर्षा होने की सम्भावना बढ़ गयी। मेरे सभासदों ने कहा—'बाबा, हम सुनते हैं कि पहले तुम जबानी ही कहानी सुनाया करते थे, अब क्यों नहीं सुनाते?'

मैं कहने ही जा रहा था कि 'शक्ति में भाटा आ गया है इसीलिए।'

ऐसे ही समय में एक बुद्धिमती बोल उठीं—'आज कल शायद तुमसे वह काम नहीं हो सकता।'

इसको सह लेना कठिन है। यह मानो हाथी के माथे पर अंकुश लगाना था। मैं समझ गया आज मेरा निस्तार नहीं है। मैंने कहा—'ऐसी बात नहीं कि मैं यह काम नहीं कर सकता। किन्तु—'

बाकी फिर कहा न जा सका। मन ही मन तब मैं
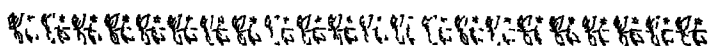
राजपुताना से कहानी बुला रहा था। मैंने जरा खाँस दिया।

यमराज के दूत पीछे पड़े हुए थे। जरा हिलना डोलना भी कठिन था। क्योंकि आवाज करने लगते थे, और उनकी शेला-शूल, छुरी, कटारी झनझना उठती थीं। उस समय एकदम सन्नाटा था।

सन्ध्या हो चुकी है, बैलगाड़ी पर चढ़ कर चल पड़े हैं। दूसरे दिन सबेरे राजमहल पहुंचने पर वे नाव लेकर पश्चिम की यात्रा करेंगे। वे राजपूत हैं, नाम है अरिजित सिंह। बंगदेश में किसी एक छोटे से राजा के यहाँ सेनापति का काम करते हैं। छुट्टी लेकर राजपुताना जा रहे हैं। रात हो चुकी है। गाड़ी में बैठे-बैठे सो गये हैं। अकस्मात् एक समय जाग उठे। उन्होंने देखा कि बन के भीतर चले जा रहे हैं। गाड़ीवान् से उन्होंने पूछा—'घाट का रास्ता छोड़ कर यह बन का रास्ता क्यों?'

गाड़ीवान ने कहा—मुझे पहचान जायँगे तो उसी समय समझ जायँगे कि क्यों?

उसने पगड़ी बहुत कुछ टेढ़ी करके पहन ली थी। सीधी करके पहनते ही अरिजित ने कहा—'पहचान गया। तुम डाकुओं के सरदार पराक्रम सिंह के दूत हो। मैं अनेक बार तुम्हारे हाथ में पड़ चुका हूँ किन्तु प्रति बार बचता चला आया।'

उसने कहा—'आप ठीक पहचान गये। इस बार आप बच नहीं सकते। चलिये मेरे मालिक के पास।'

अरिजित ने कहा—'दूसरा कोई उपाय नहीं रहा। अब तो मुझे चलना ही पड़ेगा। किन्तु तुम लोगों की इच्छा पूरी न होगी।'

गाड़ी बन में चलने लगी। इसके पहले की बातें अब खोल कर कह देने की जरूरत है।—

अरिजित बड़े घर के लड़के हैं। मुगल सम्राट ने उनका राज्य छीन लिया था। तब वे भाग कर बंगदेश में चले आये थे। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यहाँ से तैयार होकर एक दिन अपना राज्य लौटा लेंगे। इधर
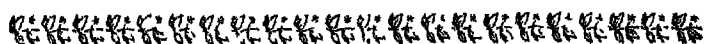
पराक्रम सिंह ने मुसलमानों के हाथ सम्पत्ति खो देने के बाद एक डाकुओं का दल बना लिया था। उसकी लड़की सयानी विवाह योग्य हो चुकी है। वे यही चेष्टा कर रहे थे कि अरिजित के साथ लड़की का विवाह हो जाय। किन्तु जाति मर्यादा में वे अरिजित की बराबरी में नहीं थे। अतः उनके घर की लड़की के साथ विवाह करने के लिए अरिजित राजी नहीं होते थे।

रात समाप्त हो चुकी है, भोर हो चला है। उनको पराक्रम के दरबार में पहुँचा दिया गया। पराक्रम ने कहा—'तुम अच्छे समय में आ गए। दो दिनों के बाद विवाह का लग्न पड़ेगा। तुम्हारे लिए वरोचित्त पोशाक सब तैयार है।'

अरिजित ने कहा—'अन्याय मत कीजिये। सभी जानते हैं कि आप के कुल में मुसलमान रक्त का संमिश्रण है।'

पराक्रम ने कहा—'यह बात सच हो भी सकती है।

इसीलिए तुम्हारी तरह उँचे कुल का रक्त मिला कर अपने वंश का रक्त संशोधन करने के लिए इतने दिनों से चेष्टा करता रहा हूँ। आज सुयोग आ गया। मैं तुम्हारी मान हानि न करूँगा। तुमको मैं बन्दी बना कर नहीं रखना चाहता। तुम मुक्त रहोगे। एक बात तुम याद रक्खो। इस बन से निकल जाने का रास्ता मालूम न रहने से किसी में भी सामर्थ्य नहीं है कि यहाँ से भाग जाय। झूठ-मूठ चेष्टा मत करो, इसके अलावा जो भी चाहो कर सकते हो।

रात बहुत बीत चुकी है। अरिजित को नींद नहीं आ रही है। वे काशिनी नदी के घाट पर बर के पेड़ के नीचे आकर, बैठे हुए हैं। ऐसे ही समय में एक लड़की वहाँ आ गयी। उसका मुँह घूँघट से ढका हुआ था। उसने अरिजित से कहा—'मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिये।' मैं, यहाँ के सरदार की लड़की हूँ। मेरा नाम रञ्जन कुमारी है! मुझे सब लोग चन्दनी कह कर पुकारते
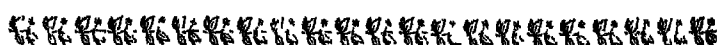
हैं। मेरे पिता जी वहुत दिनों से इच्छा करते आ रहे हैं कि आपके साथ मेरा विवाह हो जाय। सुनती हूँ कि, आप राजी नहीं हो रहे हैं। कारण क्या है, मुझे बताइये। आप क्या समझते हैं कि मैं अस्पृश्य हूँ ?'

अरिचित ने कहा—'कोई भी लड़की कभी अस्पृश्य नहीं होती। शास्त्र में ऐसा वचन हैं।'

'तो क्या मैं देखने में अच्छी नहीं हूँ, ऐसी ही आप की धारणा है।'

'ऐसी बात भी नहीं है, आपकी सुन्दरता का सुनाम मैं दूर से ही सुनता चला आया हूँ।'

'तो फिर आप राजी क्यों नहीं होते ?'

अरिजित ने कहा—'कारण मैं तुमको खोलकर बता रहा हूँ। करञ्जर की राजकुमारी निर्मल कुमारी मेरी बहुत परिचित आत्मीय हैं। उनके साथ बचपन में मैं एक साथ खेलता रहा। वे आज विपद में पड़ गयी हैं। मुसलमान नवाब ने उनके पिता के पास उनके लिए
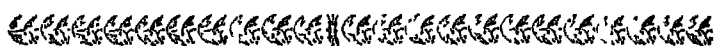
दूत भेजा था। पिता अपनी कन्या देने को राजी नहीं हुए, तो युद्ध छिड़ गया है। मैंने निश्चय किया है कि मैं उनकी रक्षा करूँगा। उसके पहले और कहीं भी मेरा विवाह नहीं हो सकता यही मेरी प्रतिज्ञा है। करञ्जर राज्य छोटा है। राजा की शक्ति कम है, मैं जानता हूँ। अधिक दिन यह युद्ध न चलेगा। उसके पहले ही मुझे वहाँ पहुँच जाना चाहिये। वहीं मैं जा रहा था, राह में ही तुम्हारे पिता ने मुझे रोक रक्खा है। अब क्या करना चाहिये यही मैं सोच रहा हूँ।'

लड़की ने कहा—'आप कोई चिन्ता न करें। यहाँ से भाग जाने में आपको कोई विघ्न न पड़ेगा। मुझे रास्ता मालूम है। आज ही रात को मैं आप को बन के भीतर ले जाकर छोड़ दूँगी। आप कुछ सोच मत करें। आप की आँखों पर पट्टी बाँध कर ले जाना पड़ेगा। क्योंकि इस बन की राह का संकेत किसी भी बाहरी आदमी को बताने का निषेध चराडेश्वरी देवी ने कर रक्खा है। इसके

सिवा मैं आपके हाथ में बेड़ी पहनाऊँगी। इसकी जरूरत क्या है यह बात आप रास्ते में ही जान जायँगे।'

अरिजित की आँखों पर पट्टी बाँध दी गयी, हाथों में बेड़ी पहना दी गयी। इसी अवस्था में वे बन के भीतर से चन्दनी के पीछे-पीछे जाने लगे। उस रात को डाकुओं का दल भाँग पीकर बेहोश हो रहा था। केवल पहरे पर खड़ा सरदार ही जाग रहा था। उसने पूछा—'चन्दनी, कहाँ जा रही हो?'

चन्दनी ने कहा—'देवी के मन्दिर में।'

'वह बन्दी कौन है?'

'विदेशी है। देवी को बलि चढ़ाऊँगी। तुम रास्ता छोड़ दो।'

'देवी का आदेश है। और किसी को साथ ले जाना निषिद्ध है।'

वे दोनों बन के बाहर जा पहुँचे। तब रात बीत चली थी। प्रायः भोर हो रहा था। चन्दनी ने
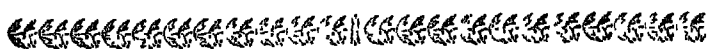
अरिजित को प्रणाम करके कहा—'आप के लिए अब भय का कोई कारण नहीं है। यह है मेरा कंगन। आप ले जाइये। जरूरत पड़ने पर यह रास्ते में काम देगा।

अरिजित करञ्जर के रास्ते पर चल पड़े। विविध विघ्नों को पार कर वे चलते रहे। जितने ही दिन बीतने लगे अरिजित को उतना ही भय होने लगा कि शायद ठीक समय पर पहुँचना न हो सकेगा। बहुत कष्ट सह कर जब वे करञ्जर राज्य के प्रायः निकट पहुँचे, तब उनको खबर मिली कि युद्ध का फल अच्छा नहीं है। दुर्ग बचाना सम्भव नहीं रहा। आज या कल ही, मुसलमान दखल ले लेंगे। इसमें सन्देह नहीं हैं। अरिजित आहार-निद्रा त्यागकर पूरी शक्ति से घोड़ा दौड़ाते हुए जब दुर्ग के निकट पहुँच गये। तब दिखाई पड़ा—वहाँ आग जल उठी है। वे समझ गये कि स्त्रियों ने जौहर व्रत ले लिया है। हार हो गयी है। इसीलिए सबने मरने के लिए चिता जला दी है। अरिजित किसी तरह दुर्ग में

जा पहुँचे। तब सब कुछ समाप्त हो चुका था। स्त्रियों में अब कोई भी बची नहीं थी। पुरुष अपनी अन्तिम लड़ाई लड़ रहे थे। निर्मल कुमारी रक्षा पा गयी। पर उसकी रक्षा मृत्यु के हाथों हुई थी, अरिजित के हाथों से नहीं, यही दुःख की बात हुई।

इसके बाद अरिजित को याद पड़ गया। चन्दनी ने उनसे कहा था, तुम्हारा काम पूरा हो जाने के बाद तुमको यहीं आना पड़ेगा। इसके लिए अन्त समय तक मैं तुम्हारी राह जोहती रहूँगी।

दो मास बीत गए। फाल्गुन के शुक्ल पक्ष में अरिजित उसी बन में जा पहुँचे। शंख बज उठे, सभी ने नूतन लाल रंग की पगड़ी पहन ली। शरीर पर बासन्ती रङ्ग की चादर फहराने लगी। शुभ लग्न में अरिजित के साथ चन्दनी का विवाह हो गया।'

मेरी कहानी यहाँ तक चली। उसके बाद बराबर के अभ्यास के अनुसार मैं सोने के कमरे में जाकर
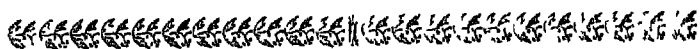
आराम कुर्सी पर बैठ गया। बादल भरे आकाश की हवा बह रही थी। वर्षा होने ही वाली थी। सुधाकान्त देखने आये कि दरवाजे-खिड़कियाँ ठीक से बन्द हैं या नहीं? आकर उन्होंने देखा कि मैं आराम कुर्सी पर बैठा हुआ हूँ। उन्होंने पुकारा। कोई उत्तर नहीं मिला। छूकर उन्होंने कहा—'ठण्ढी हवा बह रही है, चलिये बिछौने पर।'

कोई आहट नहीं मिली। उसके बाद चौसठ घंटे अचेतनावस्था में बीत गये।
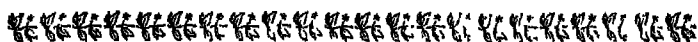
१२

सज्जन

'छिः, मैं अत्यन्त सज्जन हूँ।'

कुसुमी ने कहा—'तुम कब क्या कहते हो, इसका ठिकाना ही नहीं रहता। तुम सज्जन हो, इस बात को भी क्या कहने-सुनने की जरूरत है ? कौन नहीं जानता कि तुम उस मुहल्ले के लोटन गुण्डा के दल के सरदार नहीं हो। आखीर तुम सज्जन किसको कहते हो ?'

'इस बार तुम्हारे मुँह में ठीक प्रश्न आ गया है। सज्जन उसी को कहते हैं, जो उदार स्वभाव के कारण अन्याय के सामने भी अपना अधिकार छोड़ देता है !'
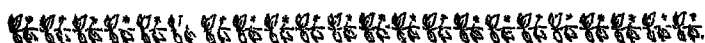
'जैसे ?'

'जैसे आज ही सबेरे एक घटना हो गयी थी ! बहुत कुछ सोच-समझकर ठीक रीति से लिखने के लिए तैयार बैठा था। ऐसे ही समय में पाँचकौड़ी आ धमका। एकदम सहारा से रेगिस्तानी हवा बह चली। मन के भीतर जो कुछ भी ताजगी थी, वह सूख गयी। यह एक प्राणी विधाता के कारखाने से वक्र होकर निकला था। किसी भी मनुष्य के साथ कहीं भी उसका जोड़ नहीं मिलता था। एक समय उसने कैलकटा का उच्चारण कालकुट्टा किया था। उसी दिन से उसे सब लोग काला कुत्ता कहकर पुकारने लगे थे। उसकी किसी से नहीं बनती थी। एक दिन हमारे रमेन ने 'रास्केल' कहकर उसकी गरदन पर घूसे लगाकर उसकी नाक टेढ़ी बना दी थी। उसी दिन उसने कह दिया था कि इसके बाद दूसरी बार उसके कानों को टेढ़ा बना देगा।

आते ही वह मेरी लिखने-पढ़ने की चौकी पर जम कर
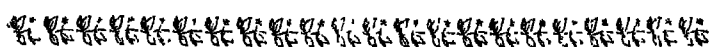
बैठ गया। सज्जन के मुंह से बात नहीं निकली कि वहाँ मैं काम करूँगा। डेस्क के ऊपर झुककर मानो अनमने भाव से सभी चीजों को इधर-उधर हटाने-बढ़ाने लगा। यह कह देने से दोष नहीं होता कि ये चीजें काम की हैं, जरूरत की हैं, इन्हें हटाना-बढ़ाना नहीं चाहिये। किन्तु, मैं भला क्या कहूँ। वह बोला—'बहुत दिनों से भेंट-मुलाकात नहीं हुई।' कुछ रुककर उसने फिर दूसरी बातें शुरू किया—'अहा ! हमारे स्कूल में पढ़ते समय के वे दिन कैसे सुखकर थे !' फिर वह लँगड़ा गोविन्द हलवाई का किस्सा सुनाने लगा। मैंने तब देखा कि मेरी सोना मढ़ी हुई फाउण्टेनपेन धीरे-धीरे खिसकती हुई, चादर की आड़ में उसके पाकेट की तरफ चली जा रही है। मेरे यह कह देने से ही काम बन जाता कि तुम भूलकर रहे हो, यह कलम तुम्हारी नहीं है, यह तो मेरी है। किन्तु मैं एक सज्जन हूँ, भद्र घराने का लड़का हूँ—इतनी बड़ी लज्जा की बात मैं कैसे
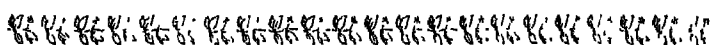
कहता। उसके चोरी करने वाले हाथ की तरफ़ मैं ताक भी न सका। मुझे सन्देह होने लगा कि यह अब कह देगा कि आज मैं यहीं खाऊँगा। तब तो मैं यह कह न सकूँगा कि यह मैं नहीं कर सकता। सोचते-सोचते मैं पसीने से तर हो चला। हठात् मेरे दिमाग में बुद्धि जाग उठी मैंने कहा—'मुझे रमेन के घर अभी जाना पड़ेगा।'

काला कुत्ता बोला—'यह तो बहुत अच्छा हुआ, मैं भी तुम्हारे साथ ही चला चलूँगा। मैंने जब से स्कूल छोड़ दिया तब से उसकी मेरी मुलाकात एक बार भी नहीं हुई।'

क्या ही मुश्किल है। मैं झट से बैठ गया। बाहर निगाह दौड़ाकर मैंने कहा—'देखता हूँ, वर्षा हो रही है।'

वह बोला—'इससे क्या होता है। मेरे पास छाता नहीं है, किन्तु तुम्हारे साथ एक ही छाता ओढ़कर मैं भी चलूँगा।'

कोई दूसरा होता तो जोर के साथ ही कहता—'यह नहीं होगा।' किन्तु मेरे लिए ऐसा कहना बहुत कठिन था। भले आदमी होने के कारण विपद में पड़ते ही मेरे दिमाग में भी बुद्धि आ जाती है। मैंने कहा—'इतनी असुविधा करने की जरूरत ही क्या है? इससे अच्छा तो यही है कि मेरा छाता तुम ही लेते जाओ। जब समय मिले लौटा देना।'

फिर एक पल भी उसने देर नहीं की। कहा—'तुम्हारी यह राय अच्छी है। इसके बाद वह छाता बगल में दबाकर झटपट चल दिया। उसे भय यह था कि फाउण्टेनपेन की खोज होने लगेगी। छाता लौटाने का सुयोग किसी दिन भी न होगा। हाय रे! मेरा पन्द्रह रुपये का छाता। छाता भी न लौटेगा, फाउण्टेनपेन भी न लौटेगी, किन्तु सबसे आराम की बात यह होगी कि वह काला कुत्ता भी न लौटेगा।

'यह तुम क्या कहते हो नाना जी! तुम क्या

अपना फाउण्टेनपेन और वह छाता फिर वापस न पाओगे ?'

'भद्रोचित विधान के अनुसार अब उसके पुनः मिलने की आशा नहीं है।'

'और अभद्रोचित विधान के अनुसार ?'

'भले आदमी की जन्म कुण्डली में यह लिखा नहीं रहता।'

'मैं तो भले आदमी नहीं हूँ, मैं उसको चिट्ठी लिखूँगी।'

'अरे छिः छिः, नहीं नहीं, इससे क्या होता है। वह कह देगा, मैंने लिया ही नहीं है।'

'मैं जानती हूँ, वह ऐसी ही बात कहेगा। किन्तु मैं उसको यह बतलाना चाहती हूँ कि उसने फाउन्टेनपेन की चोरी की है, इस बात को हम सभी जानते हैं।

'सर्वनाश ! ठीक वही बात मैं उसे बताना नहीं चाहता—वह भले आदमी का लड़का है। उसने चोरी की है—छिः छिः, यह तो बड़ी लज्जा की बात है। मेरी
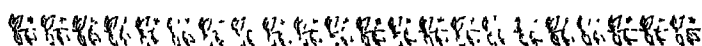
इस तरह कितनी ही चीजें चली गयीं। पर मैं सदा मौन रहा। तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था। उस समय की एक घटना है। ब्राउनिंग की कविता का आदर बढ़ रहा था। मैं खूब आग्रह के साथ पढ़ रहा था। अपने साहित्यिक मित्र को उत्साहित करके मैंने एक कविता पढ़ कर सुनायी। उन्होंने कहा—'यह पुस्तक पढ़ लेने की मेरी तीव्र इच्छा है, तीन दिन के बाद ही मैं लौटा दूँगा।' मेरा मुँह सूख गया। मैंने कहा—'इसे मैं अभी पढ़ रहा हूँ।' मैंने इतने भले आदमी के स्वर से यह बात कही कि उन्होंने पुस्तक ले जाने का अपना विचार नहीं बदला। वे पुस्तक ले गए। कुछ ही दिनों के बाद पता लगाने पर मुझे मालूम हुआ कि, वे एक मुकदमे की पैरवी करने के लिए बहरमपुर गये हैं। लौटने में देर होगी। अपने परिचित हाकर से मैंने कह दिया—ब्राउनिंग का बड़ा एडीशन यदि मिलता हो, तो मुझे खबर देना। कुछ दिन बाद खबर मिली कि मिल

सकती हैं। हाकर ने पुस्तक को निकाल कर दिखाया तो वह मेरी ही पुस्तक थी। जिस पन्ने पर मेरा नाम लिखा था, वह पन्ना फाड़ डाला गया था। मैंने उसे खरीद लिया। उसके बाद से वह पुस्तक छिपा कर रखनी पड़ी। यानी मैं ही चोर हूँ। क्योंकि मेरी लाइब्रेरी में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह फिर उसके हाथ में पड़ सकती है। मेरे सामने उसकी विद्या प्रकट हो चुकी है, इसे पीछे वे जान गये थे। अहा! जो कुछ भी हो सज्जन आदमी तो ठहरे।

अब कहने की जरूरत नहीं रही, नाना जी। मैं समझ गयी कि सज्जन आदमी किसे कहते हैं।
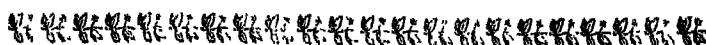
१३

मुक्त कुन्तला

'नानाजी, तुम अब भी मुझे शिशु ही समझते हो ?'

'मुझसे यह भूल तो हो ही गयी। आज कल अपनी ही उम्र के सम्बन्ध में ठीक हिसाब नहीं कर पाता हूँ।'

'बच्चों की कहानी से हमारा काम नहीं चल सकता। अब तो मेरी उम्र कम नहीं है।'

मैंने कहा—'कहानियाँ केवल बच्चे-बच्चियों के ही लिए नहीं होतीं। सभी उम्र के लोगों में वे चलती हैं। अच्छा, और भी उपयुक्त कहानी लाने की चेष्टा करता
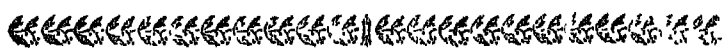
हूँ। यह नया युग है, तुम लोगों का जन्म नये युग में हुआ है। यदि मत्स्य-नारी का उपाख्यान सुनाऊँगा, तो तुम लोग तर्क करके नये-नये प्रश्न उपस्थित कर सकते हो। यह प्रश्न ऐसा हो सकता है—पूँछ यदि मछली की हो तो फिर मस्तक मनुष्य का कैसे हो सकेगा? ठहरो, मैं सोच लूँ। मुझे जादूगर हरीश हालदार मिले थे, वह केवल जादू विद्या के ही जानकार नहीं थे, बल्कि साहित्य में भी उनकी कलम चलती थी। हमारे लिए वह भी एक प्रकार का जादू ही था। मुझे स्मरण है, एक ढीले-ढाले खाते में उनका एक नाटक लिखा हुआ था। उसका नाम है मुक्तकुन्तला। ऐसा नाम किसके मस्तिष्क में आ सकता है? सूर्यमुखी, कुमुदनन्दिनी इसके सामने क्या है? इसके अतिरिक्त उसमें जो लम्बी-लम्बी बातचीत हैं, उनके बचनों को पढ़ने से मन में यही धारणा हो उठी थी कि यह तो कालिदास की छाया से बना हुआ माल है। वीराङ्गना का तेज क्या है। देशोद्धार के

लिए ताल ठोंकने का वर्णन कैसा है। नाटक के राजकुमार थे स्वयं पुरुराज के भानजे। नाम था रणदुर्धर्ष सिंह। यह भी एक उपयुक्त नाम है। मुक्तकुन्तला के नाम के साथ पैंतरा लगा सकता है। मुझे तो चकित हो जाना पड़ा।

महान सिकन्दर भारत विजय के लिए आये थे। रणदुर्धर्ष बिदा लेने के लिए मुक्तकुन्तला के पास आये। मुक्तकुन्तला ने कहा—'जाओ वीरवर! युद्ध में विजय लाभ कर आओ। सिकन्दर का मुकुट लाकर मेरे चरणों पर रख देना पड़ेगा। युद्ध में प्राण हानि हो जाने पर भी तुमको स्वर्ग लोक में स्थान मिलेगा, और यदि बच कर लौट आओगे तो मैं हूँ तुम्हारे लिए।'

'ओः, यह नाटक कितना आनन्ददायक था सोचो तो।'

'मुक्त कुन्तला बन कर अभिनय करने के लिए मैं तैयार हो गया, क्योंकि मेरे गले की आवाज मधुर थी।'

हमारे मकान के पिछवाड़े थोड़ी-सी परती जमीन
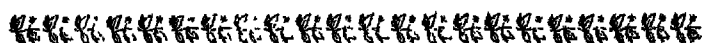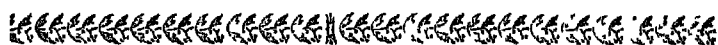
थी। बच्चों के लिए वह छुट्टी मनाने की स्वर्ग भूमि थी। उसके ही एक छोर पर हमारा भण्डार-गृह था। दरवाजे पर लोहे की छड़ें लगी हुई थीं। छड़ों के बीच से हाथ भीतर ले जाकर बोरों में से मैं दाल-चावल निकाल लेता था। ईंटों से चूल्हा बना कर खिचड़ी पकाने लगता था। बच्चों की खिचड़ी में नमक नहीं, घी नहीं, मसाला नहीं, विशुद्ध खिचड़ी पकती थी। किसी तरह आधी पक जाने पर ही मैं खाने लगता था। परती जमीन के घेरे वाली दीवाल के साथ सटा कर कुछ बाँस की टुकड़ियों के सहारे हमारे विख्यात नाटक-कार ने विविध आयतन के अखबारों को जोड़-जोड़ कर एक स्टेज बना लिया था। स्टेज शब्द को सुनते ही हमारी छाती फूल उठती थी। इसी स्टेज पर मुझे मुक्त कुन्तला का अभिनय करना था। सभी बातें याद नहीं हैं किन्तु अभागिनी मुक्त कुन्तला की दुःख पूर्ण दशा कुछ कुछ याद पड़ती है। वह हाथ में तलवार लेकर
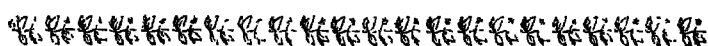
घोड़े पर सवार होकर वीर-पुरुष के साथ सहयोग करने गयी थी। किन्तु घोड़ा कौन बना था, इसका स्मरण नहीं है। युद्ध-क्षेत्र में जाकर वीर ललना ने मातृभूमि के लिए प्राण दे दिये थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। उनकी छाती में जब बर्छी बिंध गयी, जब जमीन पर उनका मुक्त कुन्तल बिखरा पड़ा था, तब रण दुर्धर्ष उसके पास आकर खड़े हो गये।

वीराङ्गना ने कहा—'वीरवर! मुझे अब बिदा होने दो, शायद स्वर्ग में हम लोगों का मिलन होगा।'

अहा:! फिर करतल ध्वनि का अवसर आया।

अभिनय की तैयारी यथासम्भव पूरी की गयी थी। दाढ़ी-मूँछ कहीं से लायी गयी थी। हरीशचन्द्र के उद्योग से ही यह काम हुआ था। भाभी जी के पैरों पर गिर कर कई साड़ियों को भी मैंने जुटा रक्खा था। उनके सिंधोरे से सिंदूर लेकर माँग में पहन लिया था। मुझे कोई संकोच नहीं हुआ। स्कूल जाते समय अपनी माँग

का सिन्दूर पोंछना भूल गया था। लड़के खूब हँसते रहे। क्लास में मुँह दिखाने में भी मुझे लज्जा मालूम होने लगी थी। कुछ दिन ऐसी ही दशा में बीत गये। मुँह दिखाना भी मेरे लिए कठिन हो गया था।

हमारे स्टेज के स्थान पर मझले भैया ने कुश्ती का अखाड़ा तैयार किया। मुक्त कुन्तला की सबसे बड़ी दुर्गति युद्ध-क्षेत्र में नहीं हुई, बल्कि इस कुश्ती के अड्डे पर हुई। रण दुर्धर्ष से मधुर स्वर में यह कहने का अवसर नहीं मिला कि हे वीरवर, सम्भव है कि स्वर्ग में तुमसे मुलाकात होगी। इसके बदले में कहना पड़ा—'नौ बज गये, स्कूल जाने के लिए गाड़ी तैयार खड़ी है।'

१४

वाचस्पति

'नानाजी, तुमने अपने चारो ओर जिन पागलों को एकत्र कर रक्खा था, उनको गुण के हिसाब से क्या तुमने नम्बर दे रक्खा था?'

'हाँ, ऐसा तो जरूर ही करना पड़ा था। मेरे यहाँ कम लोगों का जमावड़ा नहीं था।'

तुम्हारे प्रथम नम्बर के पागल वाचस्पति जी मुझे बहुत मजेदार आदमी जान पड़ते हैं।'

'मुझे केवल मजेदार ही वह नहीं मालूम होता, बल्कि
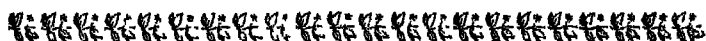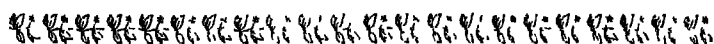
आश्चर्यजनक भी लगता है। इसका कारण बता रहा हूँ—'मैं कविता लिखा करता हूँ। बातों को चुराना, टेढ़ा-मेढ़ा करके सजा देना हमारा पेशा है। जिस शब्द का कोई सरल अर्थ है, उसमें हमलोग ध्वनि जोड़ कर उसके चेहरे को बदल देते हैं। इसे एक तरह की जादू विद्या कह सकते हैं। यह कोई सहज काम नहीं है। हमारे वाचस्पति जी ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया था, जब कि मैंने देखा उन्होंने एकदम विकट भाषा तैयार कर ली है। हमारा काम भी बहुत अंशों में वही है, किन्तु उस हद तक नहीं। हम तो व्याकरण के शब्दकोष के अनुसार चलते हैं। वाचस्पति की भाषा इन सभी को पार करके चलती थी। वाचस्पति जी मेरी 'अद्भुत-रत्नाकर सभा' के प्रधान पण्डित थे। प्रारम्भिक अवस्था में उन्होंने काफी विद्या सीखी थी। उससे मन का तल भाग तक धुल गया था। अकस्मात् एक समय उनको खयाल हुआ, भाषा के जितने भी शब्द हैं, वे शब्दकोषों के आँचल पकड़
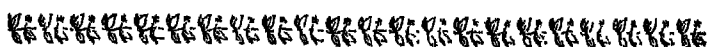
कर चलते हैं। भाषा की यह गुलामी कलियुग में उपस्थित हुई है। सत्ययुग में सभी शब्द आप ही आप मुँह से निकल पड़ते थे। साथ ही साथ वे अर्थ खींच लाते थे। वे कहा करते थे, शब्द का अपना काम ही है समझा देना। एक दिन एक नमूना सुना कर उन्होंने चकित कर दिया। वे बोले—'मेरी नायिका ने जब नायक से हाथ हिलाकर कहा था—'दिन-रात चलने वाले तुम्हारे हिद्हिद्हिदिक्कार से मेरी पजंजरी में तिडितंक लग जाता है।' तब उसका अर्थ समझाने के लिए पण्डित को बुलाने की जरूरत नहीं पड़ी थी। जैसे पीठ पर मुक्की मार कर उसको मुक्की सिद्ध करने के लिए महामहोपाध्याय की जरूरत नहीं पड़ती।'

सभापति ने एक दिन विषय को सामने रख कर कहा—'ऐ वाचस्पति जी, उस लड़के की क्या दशा हुई?'

वाचस्पति ने कहा—'उस लड़के का बुझक्किन् शुरू से ही बुझभुम्बुल श्रेणी का था। उसका नाम मैंने रख दिया था बिचूकुमकुर।'
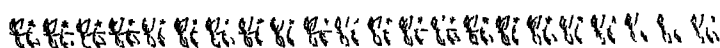
माथुर बाबू ने पूछा—'वह नाम क्यों ?'

वाचस्पति ने कहा—'वह तो बिल्कुल ही बिच्कुम्कुर है ! पाठशाला के पेडेग्डा को देखते ही उसका आन्तारा फिसल जाता था। छाती के भीतर कुडुवकुर कुडुक्कुर करने लगता था। ऐसे लड़के को अधिक पढ़ाने से वह बिलकुल ही फिसल जायगा। यह बात उसने कही थी जो कि मुहल्ले का सबसे बड़ा पेडाम्बर हुडुम्की था। जरा ठहरिये—समझा कर कहता हूँ। पेडेग्डा शब्द मुझे बाली द्वीप से मिला है। उनके मुख का पण्डित शब्द आप ही आप पेडेग्डा हो गया है। सोचिये तो वजन कितना बड़ा है। उसकी विद्या के बोझ को ढो ले जाने के लिए दस-बीस डिग्रीधारियों की जरूरत पड़ती है। और पण्डित—इस शब्द को तो चुटकी बजाकर तुड़तुंड़ू करके उड़ा सकते हैं।

अटल भाई ने कहा—'वाचस्पति तुम्हारा आज का वर्णन तो बिलकुल ही चालू ग्रामीण भाषा में है। यह तो तुमको शोभा नहीं देता। उस दिन तुम्हारे मुह
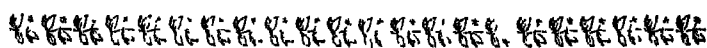
से जो साहित्यिक भाषा निकल पड़ी थी, उसी भाषा का जरा नमूना आज इन लोगों को सुना दो। जिस भाषा में तुमने भारत का इतिहास गूँथ डाला है।'

वाचस्पति जी ने आरम्भ किया—सम्मम्राट समुद्र-गुप्त के क्रेङ्कटाकृष्ट त्वरितम्यन्त पर्यूंगासन उत्थून्सित—

एक सभापति ने कहा—वाचस्पति जी, उत्थून्सित शब्द सुनने में अच्छा लगता है, उसका अर्थ समझा दीजिये।'

पण्डित जी ने कहा—'उसका अर्थ है उन्थून्सित।'

'उसका अर्थ?'

'उसका अर्थ है उत्थून्सित।'

'अर्थात्?'

'अर्थात् उसका अर्थ हो ही नहीं सकता। किसी तरह से मार-काट एक अर्थ दे भी सकता हूँ।'

'वह क्या?'

'भिर्रांभ्रगह।'

अब कहना न पड़ेगा, स्पष्ट समझ गया हूँ, आप कहते जाइये ।'

वाचस्पति ने फिर शुरू कर दिया—सम्ममराट समुद्रगुप्त के क्रोञ्जूटाकुष्ट त्वरितम्यन्त पर्युगासन उत्थूसित निरंकराल के साथ—'

माथुर बाबू के मुँह की तरफ देख कर वे बोले—क्यों महाशय, समझ गए तो निरंकराल ?

'बहुत ही आसानी से समझ गया । अब उससे अधिक मैं समझना नहीं चाहता ।'

वाचस्पति फिर कहने लगे—'निरंकराल के साथ अजात शत्रु ने अपरिपर्यम्मित गर्गरायण को परमन्ति शयन में समुसद्गारित किया था ।'

यहाँ तक कह कर वाचस्पति जी ने एक बार सभा में एक साथ सब लोगों के मुँह की तरफ निगाह दौड़ा ली और फिर बोले—'देख लीजिये, सहज किसे कहते हैं, शब्दकोष की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती ।'

सभा में उपस्थित लोगों ने कहा—'जरूरत होने पर भी हम कहाँ पायेंगे।'

वाचस्पति जी ने आँखें मटका कर कहा—'भावार्थ तो समझ ही गये होंगे?'

माथुर बाबू बोले—'जरूर समझ गया हूँ। समुद्र-गुप्त ने अजात शत्रु को अच्छी तरह पीट दिया था। अहा! वाचस्पति जी, उस मनुष्य को बिलकुल ही समुसद्गारित कर दिया था जो—एकदम परमन्ति शयन में।

वाचस्पति बोले—'एक दिन छोटे लाट साहब हमारे गाँव के स्कूल में अपने बूटों को धूल प्रदान करने आये थे। तब मैंने इसी बुगबुलबुली भाषा का एक अंग्रेजी अनुवाद उनको सुनाया था।'

सभा में उपस्थित लोगों ने कहा—'अब अंग्रेजी सुन लेना चाहिये।'

वाचस्पति पढ़ने लगे—'दि हब्बरफलुअस इन फैचुफु
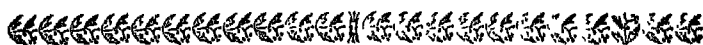
एशन ग्राव अकबर डबेंरिडकेली लेसेरटाइजट् दि गबेरिडजम् ग्राव हुमायूँ ।' सुनकर छोटे लाट बिलकुल ही टरेटम् बन गये थे । मुँह दबी हँसी से फुसकायित हो गया था । हेड पेडेराडो की शिखा के चारो तरफ वेरेराडम् लग गया, सेक्रेटरी कुर्सी से तडत के साथ उत्थिये उठे । लड़कों को उजबुम्मुखो फुड़फुडोमी देख कर मालूम हुआ वे मानो सभी फिरिचुञ्चुस की एकदम चिक्चाक्स ग्रामदनी हैं । रुख देख कर मैंने चंचटका दे दिया ।'

सभापति ने कहा—'वाचस्पति, यहीं बन्द करो जी, और अधिक समय तक चलने से परागगलित हो जाऊँगा । अभी ही मस्तिष्क में तज्झिम् मज्झिम करने लगा है ।

वाचस्पति के कुछ दिन और जीवित रहने से सभापति की भाषा इतने दिनों में उन लोगों के मुख बुद्बुदी शब्दों से रझम्-गझम् करने लगती ।

१५

पन्नालाल

'नानाजी, तुम्हारे पागलों के दल में पन्नालाल बिल्कुल नये ढंग का आदमी था।'

'जानती हो बच्ची? पागलों में से प्रत्येक नवीन होता है, किसी के साथ किसी का भी मेल नहीं रहता। जैसे तुम्हारे नाना जी। विधाता की नवीन रचना है। साधारण लोगों की बुद्धि में परस्पर मेल होता है, असाधारण पागलों में मेल नहीं होता। तुमको मैं एक उदाहरण देकर बतला रहा हूँ।'
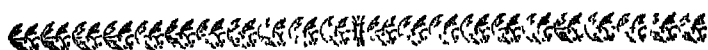
मेरे दल में एक पागल था। उसका नाम था त्रिलोचनदास। वह बिना तीन कोस घूमे घर नहीं लौटता था।

पूछने पर कहता था, भाई यमराज के दूत चारो तरफ घूमते-फिरते रहते हैं, उनको बिना धोखा दिये बचना कठिन है। जानते तो हो, मेरे बापू जी कैसे अपनी ही धुन के आदमी थे? किसी तरह भी वे मेरा परामर्श नहीं मानते थे। वे बराबर सीधा रास्ता पकड़ कर घर जाया करते थे। उसके बाद क्या हुआ जानते हो तो? आज वे कहाँ हैं? और मैं आज सात वर्षों से पश्चिम तरफ का रास्ता पकड़ कर अपने पूरब तरफ के मकान में जाया करता हूँ। कोई पूछता है तो कहता हूँ, भोजू मण्डल के घर निमंत्रण पर जा रहा हूँ। पूजा का निमंत्रण है।

संसार में जितने भी बुद्धिमान हैं सभी सीधे रास्ते से घर जाते हैं। समस्त विश्व में केवल एक ही
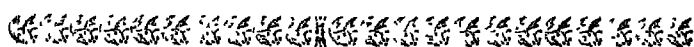
ऐसा मनुष्य है जो घर जाने में तीन कोस का रास्ता घूम चक्कर लगा कर अपने घर जाता है।

मेरे दो नम्बर की बात सुनो। वाचस्पति की बात सुन कर कहता था—'अहा! यह बिलकुल ही बेहेड हो गया है।' और वाचस्पति उसकी बात सुन कर मुसकुराने लगते थे। कहते थे—'इस आदमी के मस्तिष्क में बुजगुम्बुल का डेरा है।'

सभापति ने कहा—'क्यों जी तुम्हारे मकान का क्या हो गया था?'

'इतने दिनों के पैतृक घर ने पथ के साथ झगड़ा खड़ा कर दिया, ऐसी दौड़ लगा दी, कि कोई भी चिह्न कहीं भी नहीं छोड़ा।'

'क्या कहते हो? बताओ तो क्या बात है?—'

'कलकत्ते में पालन-पोषण हुआ। बाबू जी की मृत्यु के बाद हाथ में कुछ रुपये आ गये। निश्चय कर लिया कि एक बार पैतृक मकान देख आने
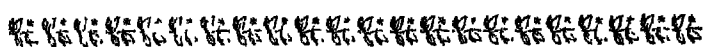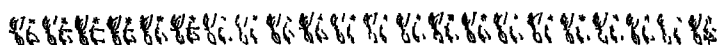
की जरूरत है। उस मकान के सम्बन्ध में मुझे केवल यही जानकारी थी—पाँचकुण्डू नामक गाँव में उसकी दीवालें थी। भोजूधारा से साढ़े सात कोस की दूरी पर। शुभ दिन देख कर नाव पर चढ़ कर मैं भोजूधारा जा पहुँचा। कोई भी ठिकाना न बता सका। मैं खोज में निकल पड़ा। बनिया की दूकान से चिउड़ा फरुही लेकर बाँध लिया। सात कोस रास्ता चलने पर रात के नौ बज गये। चारो तरफ परती जमीन थी। जंगली पौधों का जंगल लगा था। मकान का कोई भी चिह्न नहीं था। बार-बार जाना-आना मैंने जारी रक्खा। मकान ढूँढ़ने पर नहीं मिला। रास्ते के दूकानदार ने मुझे देख कर क्या सोचा कौन जानता है।'

मेरी दुर्दशा की बात सुन कर वह बोला—'तुम एक काम करो भाई साहब, बोडोग्राम में विख्यात ज्योतिषी मधुसूदन जी रहते हैं। जन्म-पत्री देख कर वे तुम्हारे पुश्तैनी मकान का पता बता सकेंगे।'

उनको किसी प्रकार से खबर मिल गयी थी कि मेरे हाथ में कुछ माल है। वे खूब उत्साह के साथ गणना करने लगे। अनेक रेखाएँ काट कर अन्त में उन्होंने कहा—'आपके मकान के साथ रास्ते का विशेष मनमुटाव हो गया है। एकदम मुँह देखना तक भी बन्द है। मकान क्रुद्ध होकर मौसी के घर भाग गया है।'

मैंने घबड़ाहट के साथ पूछा—'मौसी का घर कहाँ है?'

'सुन कर आप विश्वास न करेंगे। वह सात हाथ मिट्टी के नीचे दबा है। वहीं वह अपना मुँह छिपा रखा है।'

'तो अब उपाय क्या है?'

'उपाय है। आप कलकत्ता लौट जाइये। यथोचित परिमाण में कुछ रुपये रख जाइये। ठीक साढ़े-सात महीने बाद लौट आइयेगा। मौसी को खुश करके आपका

पैतृक मकान लौटा लाऊँगा। किन्तु, कुछ दक्षिणा लगेगी।'

ज्योतिषी की बहादुरी आश्चर्यजनक सिद्ध हुई। साढ़े सात महीनों के बाद मैं लौट आया। भोजूधारा से नाप कर ठीक साढ़े सात कोस की दूरी पार कर गया। जहाँ कुछ भी नहीं था वहाँ वह मकान मस्तक ऊँचा करके खड़ा दिखाई पड़ा। मैंने कहा, किन्तु ज्योतिषी महाराज! यह गृह तो एकदम छीला-पोंछा नया ही मालूम हो रहा है।

आप लोग सभी हँस रहे हैं, किन्तु यह तो बिलकुल मेरी आँखों से देखी हुई घटना है। आम की लकड़ी के दरवाजे-जंगले लगे थे और ताड़ की लकड़ी की धरन बँड़ेरी भी। मेरे कालेज के मित्रों ने इस बात को उड़ा देना चाहा था। तब मैंने अपने बालुकडांगा के विख्यात पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी को इस विषय पर विधान देने के लिए बुला भेजा। उन्होंने कहा, संसार में सबसे

बड़ी विपद वही है जब कि रास्ते के साथ मकान की होड़ चलने लगती है।

उन्होंने इससे अधिक एक भी बात कहना नहीं चाहा। मैंने कलकत्ते के मित्रों से ढकेल कर कहा, कैसा हुआ !

पन्नालाल की कहानी सुन कर वाचस्पति ने मुसकुरा कर कहा—भोरम्भोल ! बनावटी निरर्थक !

१६

ध्वंस

'बच्ची, मैं तुमको हाल का समाचार सुना रहा हूँ।

पैरिस नगर से कुछ ही दूरी पर उनका छोटा-सा मकान था। मकान के मालिक का नाम था पियेर शोप्याँ। उनके जीवन में सदा से यही शौक था—पेड़-पौधों की जोड़ी मिला कर, उनके स्वरूप को, उनके रंग को, उनके स्वाद को बदलकर नवीन उत्पादन कर देना। इस काम में समय कम नहीं लगता था। एक-एक फूल का, फल का स्वाद बदलने में वर्ष के बाद वर्ष बीत जाते
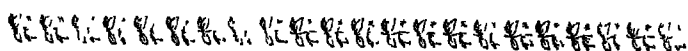
थे। इस काम में उनको जैसा आनन्द आता था, उनका धैर्य भी वैसा ही बना रहता था। बगीचा सजाने में मानो वे जादू का काम करते थे। लाल बदल कर नीला हो जाता, श्वेत आलता के रंग का हो जाता, गुठली लुप्त हो जाती थी, छिलका लापता हो जाता था। जो फल छः महीने में तैयार होते थे, वे दो महीने में तैयार होने लगे। गरीब आदमी थे, व्यवसाय में सुविधाजनक लाभ नहीं कमा पाते थे। जो भी उनके हाथ की निपुणता की बड़ाई करता था, उसको अपना कीमती माल मुफ्त में बाँट देते थे। जो बिना दाम दिये माल लेना चाहता था, वह उनके पास आकर कहता—आपके उस पौधे में कैसा सुन्दर फूल खिला हुआ है, चारो तरफ से लोग देखने आ रहे हैं, देखते ही लोग चकित हो जा रहे हैं।

वे दाम माँगना भूल जाते थे।

उनको अपने जीवन में अपनी लड़की पर विशेष स्नेह था। उसका नाम था कैमिल। वह उनके लिए
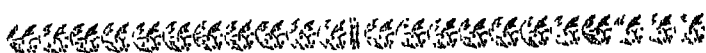
बहुत ही आनन्ददायक सामग्री थी। उनके काम-काज में संगिनी थी। उसको उन्होंने बगीचे के काम में सुनिपुण बना दिया था। उचित रूप से बुद्धि का प्रयोग करके कलम का जोड़ लगाने में वह अपने पिता से कम नहीं थी। उसने बाग में माली रखने नहीं दिया। वह अपने ही हाथ से जमीन कोड़ती-खोदती थी, बीज बोती थी, जंगली घास-पात खोद कर बाहर निकाल देती थी। पिता के साथ समान परिश्रम करती थी। इसके अतिरिक्त रसोई पका कर पिता को खिलाती-पिलाती। कपड़े सीकर देना और उनकी तरफ से चिट्ठियों का उत्तर लिखना आदि सभी कामों का भार उसने अपने ही ऊपर ले रक्खा था। उनका यह छोटा-सा मकान चेष्टनट वृक्ष के नीचे था। उनके बगीचे की छाया के नीचे गाँव-मुहल्ले के लोग चाय पीते-पीते बातें किया करते थे।—आपका बाग सेवा शान्ति से सदा भरा रहता है। वे जवाब देते—हमारा यह घर बहुत ही दानी है, राजा के मणि-माणिक्यों
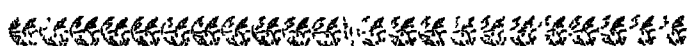
से यह नहीं बना है बल्कि यह दो प्राणियों के प्रेम से बना है। कहीं और यह नहीं मिल सकता।

जिस लड़के के साथ लड़की के व्याह की बात तै थी, वह जैक कभी-कभी काम में मदद देने के लिए आया करता था। कानों में धीरे-धीरे पूछता था—शुभ दिन कब आ जायगा। कैमिल बराबर ही दिन टालती जाती थी, बाप को छोड़ कर वह कभी विवाह करना नहीं चाहती थी।

जर्मनी के साथ फ्रान्स का युद्ध आरम्भ हो गया। राज्य का नियम कठोर था। पियेर को लोग युद्ध में पकड़ ले गये। कैमिल ने आँखों के आँसू छिपा कर पिता से कहा—'कुछ भी फिकर मत करो बाबू जी। आपसे इस बाग को मैं प्राण देकर बचा रक्खूंगी।'

उस समय लड़की पीले रंग का रजनी गंधा फूल तैयार करने की जाँच कर रही थी। पिता ने कहा था—'यह नहीं होगा।' लड़की ने कहा था—
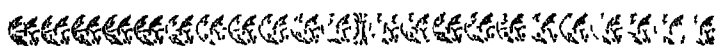
'होगा ।' उसकी बात यदि सच निकली तो पिता के युद्ध से लौट आने पर वह उनको चकित अवाक् कर देगी, यही उसकी प्रतिज्ञा थी ।

इसके बीच जेक दो दिनों की छुट्टी पर घर यह खबर देने के लिए आगा था कि पियेर को युद्ध में सेनापति का तगमा मिला है । स्वयं न आकर उसने उसे ही यह सुसमाचार देने के लिए भेज दिया है । जैक ने आकर देखा, उस दिन सबेरे ही गोला आकर फूल के बाग में गिर पड़ा था । पियरे का प्राणों से भी प्यारा बाग बम गोले से प्राणविहीन होकर छिन्न-भिन्न हो गया था । ध्वंस के प्रभाव से कैमिल भी बची न रह सकी । उसके भी प्राण पखेरू उड़ गये ।

सभ्यता की संहार-शक्ति देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गये थे । शक्तिशाली तोप का गोला पचीस मील की दूरी से आ गिरा था ।

सभ्यता का जोर कितना है, इसकी एक बार परीक्षा